TEXT CUT WITH IN THE BOOK ONLY.
P.NO.8TO27 PAGES.

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180304

UNIVERSAL
LIBRARY

उत्तराधिकारी

(पहाड़ी जीवन की रोमांचक कहानियाँ)

यशपाल

द्वितीय संस्करण

प्रकाशक

विप्लव कार्यालय, लखनऊ

गस्त १९५६]

दो रुपये आठ आना

प्रकाशक :—
विप्लव कार्यालय
लखनऊ

अनुवाद की प्रस्तुत लिपि के प्रकाशन का अधिकार अनुवादक द्वारा सुरक्षित है

मुद्रक
साथी प्रेस
लखनऊ

समर्पण

गत तीन वर्षों से अलमोड़ा में बिताये अनेक महीनों में सहृदय परिचितों से इस पहाड़ी देश का कुछ परिचय पा कर यह कहानियां लिख सका हूं। यह कहानियां अलमोड़ावास की स्मृति में उन्हीं साथियों को समर्पित हैं।

यशपाल

सितम्बर १९५१
डिग्गी बंगला
अलमोड़ा

कहानियां	पृष्ठ
ऐं ! ऐं !! का उत्तर	७
उत्तराधिकारी	१३
जाब्ते की कारवाई	२८
अगर हो जाता	३६
अंग्रेज का घुंघरू	४७
अमर	५६
चन्दन महाशय	६५
कुल-मर्यादा	७६
डिप्टी साहब	८८
जीत की हार	१००

उत्तराधिकारी

"ऐं ऐं !!" का उत्तर

कुछ दिन एक बहुत तंग जगह में रहने का अवसर हुआ था। सोना, बैठना, रांधना और नहाना-धोना सब एक ही कमरे मे था। कमरे में एक ओर दरी-चटाई बिछा कर बैठने की जगह बना ली गई थी। एक कोने मे अंगीठी और बर्तन, दूसरी ओर कोने में मोरी के पास बाल्टी और साबुन रखा था।

घर में आठ-नौ मास का एक बच्चा भी था। बच्चे की मां सीने-पिरोने में लगी हुई थी। मैं एक ओर बैठा कुछ पढ़ रहा था। बच्चा घुटनों के बल रेंगता बाल्टी-साबुन वाले कोने मे जा पहुँचा।

"ऐ ! ऐ !!"—बच्चे का स्वर सुनाई दिया। देखा, बच्चा साबुन की बटिया मुह मे डाल रहा था।

"देखो, देखो !"—बच्चे की मां का ध्यान उधर दिलाया—"साबुन खा रहा है।"

"खायेगा नहीं"—मां ने सिलाई की ओर से आंख नहीं हटाई।

"मुँह में डाल रहा है, जल्दी उठो !"—आग्रह किया।

"नहीं, खायेगा नहीं। ध्यान खींचने के लिये डरा रहा है। उधर मत देखो, छोड़ दगा।"—मा ने आश्वासन दिया।

कुछ विस्मय हुआ। पुस्तक की ओर मुह मोड़ कनखियों से देखता रहा। बच्चे ने साबुन नीचे डाल दिया और खाली डिब्बिया से खेलने लगा।

"अब तो सचमुच नहीं खा रहा"—मैंने स्वीकार किया, "बड़ा शैतान है !"

"अब फिर दखना"—मां सिलाई से ध्यान हटा बच्चे से बोली—"हाय साबुन खा रहा है ! ना, ना बेटा ! छि, छि ! ना, यह नही खाना।"—बच्चा फिर साबुन मुह में डालने लगा।

बच्चों से निभा पाने के लिये उन का स्वभाव समझना आ। होता है।

× × ×

डा० रामविलास, अमृतराय और चन्द्रबलीसिंह मेरी रचनाओं की दस-दस, बीस-बीस, पृष्ठ की आलोचना करते हैं। मैं इन्हें देखता न होऊँ सो बात नहीं। बहुत से लोगों के बारबार आग्रह करने पर भी उन की "ऐं! ऐं!!" का उत्तर नहीं देता। कारण ऊपर की घटना से स्पष्ट है।

पाठकों का ध्यान आकर्षित करने और अपने नाम की चर्चा सुनने की इच्छा उन में स्वाभाविक है। कब उन की "ऐं! ऐं!!" का उत्तर देना उचित है और कब उपेक्षा करना, यह उन की "ऐ! ऐं!!" के तथ्य को परख कर रचनात्मक लेखकों को स्वयं ही समझना चाहिए। राहुल जी ने उपेक्षा ही की। रांगेय राघव ने उस की इतनी परवाह क्यों की? स्वयं इतनी अच्छी और बेजोड़ चीजें लिखना छोड़ कर केवल 'अहं' के प्रदर्शन के लिये 'ऐं! ऐ!!' की ओर ध्यान देना? परिणाम हुआ केवल आदत बिगाड़ना। अब "ऐ! ऐं!!" इतनी बढ़ गई है कि उत्तर देना जरूरी हो गया।

× × ×

यह बात नहीं कि पाठक से लेखक सीखता न हो। जनता से ग्रहण की हुई भावनायें और प्रेरणायें ही साहित्य बन कर फिर जनता पर बरसती हैं, जैसे वाष्प बन कर पृथ्वी से ऊपर उठा जल बादल बन कर पृथ्वी पर बरसता है। आलोचक को पाठकों का प्रतिनिधि ही समझा जाना चाहिये। लेखक की रचना के जनता पर पडे प्रभाव और प्रतिक्रियायें ही आलोचक द्वारा प्रकट होना चाहियें ताकि लेखक के प्रयत्न पाठकों के लिये अधिक उपयोगी और सन्तोष-प्रद हो सकें। लेकिन आलोचक जब सर्वसाधारण पाठकों पर पड़े प्रभाव या उन की प्रतिक्रिया की उपेक्षा कर उन्हें आज्ञा दे कि तुम पर ऐसा प्रभाव पड़ना चाहिए, तो वह जनता का वैसा ही प्रतिनिधित्व करता है जैसा कि आज इस देश में जनता की प्रतिनिधि कहलाने वाली पूँजीवादी सरकार जनता का प्रति-निधित्व कर रही है।

प्रगतिशीलता के प्रतिनिधित्व का दावा करने वाला आलोचक अभी कल तक रचनात्मक लेखक को समझाता था कि जनता की आर्थिक लड़ाई और वर्ग चेतना के अतिरिक्त किसी और विषय पर लिखना पलायन है। आज वह

जाय ? साम्राज्यवाद और सामन्तवाद का रक्षक होने की तोहमत इसलिए कहता है कि राहुल ने अभी इस देश मे साम्राज्यवाद और सामन्तवाद से संघर्ष की आवश्यकता होते हुये भी वर्गहीन समाज के लक्ष्य का परिचय जनता को दे दिया। रामविलास की बुद्धि के अनुसार राहुल ने ऐसा कर "नये जनतंत्र के लिये संघर्ष को कमज़ोर बनाया।" मानो, वर्गहीन समाज को लक्ष्य मानने वाली जनता जनतंत्र का विरोध या उपेक्षा करेगी।

प्रगतिवाद के प्रतिनिधित्व का दम्भ करने वाले इस आलोचक के मत में "राहुल जी का यह काम त्रात्सकीवाद है।" ऐसे विकट मार्क्सवादी के अनुसार जर्मनी में सामन्तवाद और साम्राज्यवाद का अन्त हुए बिना "कम्युनिस्ट घोषणापत्र" लिख संसार के मज़दूरों के सामने वर्गहीन समाज का लक्ष्य रख देना क्या था? रूस में साम्राज्यवाद और सामान्त दोनों के विरुद्ध संघर्ष की आवश्यकता रहते हुए लेनिन का रूस के मजदूरों को वर्गहीन समाज का लक्ष्य समझाना क्या था? यदि मार्क्स और लेनिन आज मौजुद होते तो रामविलास पाठकों की नज़र में चढ़ने के लिये उन दोनों को भी त्रात्सकीवादी बता सकता था। जो आदमी 'लक्ष्य' और 'तात्कालिक कार्यक्रम' के अन्तर को हड़प जा सके, समाज की अनेक समस्याओं की ओर से आखें मूंद सके वही इतना हतबुद्धि हो जा सकता है कि अपने "अहं" के फेर में, अपनी ओर ध्यान आकर्षित करने का हो-हल्ला खड़ा करने के लिए प्रगतिवाद की साझी नाव में छेद कर दे।

राहुल को सामन्तवाद और साम्राज्यवाद की रक्षा न करनी होती तो वह मानवता के कल्याण का एक मात्र उपाय "समाजवाद ही क्यों?" क्यों बताता? "एं एं!" का प्रयोजन तो पूरा हो गया। लोगों ने चकित हो कर पूछा—हिन्दी जगत को समाजवाद का परिचय सब से पहले और विस्तृत रूप में देने वाले और रूढ़िवादियों के क्रोध का पात्र बनने वाले लेखक को भी सामन्तवाद और साम्राज्यवाद का सहायक सिद्ध कर देने की विद्वता किस में है? बस काफी है। नाव को कुछ आगे बढाने,की योग्यता दिखा कर ध्यान आकर्षित नहीं किया जा सकता तो नाव में छेद कर के ही सही। ध्यान आकर्षित करने के लिये यह शरारत अधिक सफल होगी।

और उदाहरण लीजिये, मेरी दो कहानियों की आलोचना कर अमृतराय ने यह निष्कर्ष निकाला है :—"यह सड़ी-गली साम्राज्यवादी नैतिकता है

जिस का समाजवादी नैतिकता से रत्ती भर मेल नही" और "यह बं.
कहने की हिम्मत बोस को इसलिये हुई कि हमारा समाज पुरुष-शासित स
है। जिस में पुरुष शोषक है और स्त्री शोषित।" जिन कहानियों से ऐसे निष्कष निकलते हैं अमृतराय साम्राज्यवाद के हाथ मजबूत करने वाली कहानियां बताते हैं। इन की राय में साम्राज्यवादी नैतिकता के प्रति घृणा और विरोध पैदा करना साम्राज्यवाद के हाथ मजबूत करना है ? इस "ऐं ! ऐं !!" का क्या उत्तर ?

मेरी 'फूलो का कुर्त्ता' कहानी की अन्तिम पक्तियाँ हैं—"बदली हुई स्थिति में भी परम्परागत संस्कार से ही नैतिकता और लज्जा की रक्षा करने के प्रयत्न मे क्या से क्या हो जाता है ?… हम फूलो के कुरते के आँचल मे शरण पाने के प्रयत्न में उघड़े चले जा रहे हैं और नया लेखक कुर्ते को चेहरे से नीचे खेंच देना चाहता है।" अमृतराय इस कहानी को आधी दर्जन बार पढ़ जाने पर भी इस का सिर-पैर कुछ नहीं समझ पाये। मैंने यह कहानी १९४६ में एक वक्तव्य के रूप मे बम्बई के प्रगतिशील लेखक संघ की बैठक में पढ़ी थी। वहाँ यह कहानी सभी को "बहुत साफ़" मालूम हुई थी। बाद में 'जन युग' के अनुरोध पर उन्हें इसे छाप लेने की भी अनुमति मैंने दे दी थी। यह सब इसलिये कि उन लोगों की दृष्टि आलोचक की दृष्टि नहीं थी। एक पाठक आलोचक की राय इस कहानी के लिए थी कि इस मे कला का संकेत न रह कर प्रचारक का मुंहफटपना आ गया है। प्रचार की स्पष्टता का दोष इस कहानी मे स्वीकार किया जा सकता है परन्तु अमृतराय कहते है कि उन्हें इस का भाव, रहस्य या सिर-पैर कुछ समझ नही आथा। यह है आलोचक का पैनी सूझ।

संक्षेप के लिए मेरे सब से छोटे उपन्यास 'पार्टी कामरेड' का ही जिक्र पर्याप्त होगा। अमृतराय और रामविलास को इस में कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं पर कलंक के धब्बे लगाये गये दिखाई देते हैं। यह है आलोचकों की ज्ञान दृष्टि। और पाठकों की ? इस उपन्यास के प्रकाशित होते ही नागपुर की मजदूर-सभा के अन्तर्गत 'प्रेस कर्मचारी संघ' के कार्यकर्ता प्रचार के लिये इस पुस्तक को लागत मात्र मूल्य में बेच सकने के लिए बिना मजदूरी लिये छापने और इस के कागज के लिये आपस में चन्दा कर लेने के लिए तैयार थे। यह है सर्वसाधारण मज़दूर की परख ! परन्तु शायद उन्हें पर्याप्त रूप से सचेत और

जाय नहीं माना जायगा ! 'पार्टी कामरेड' के छपने से पूर्व उत्तर प्रदेश और बिहार प्रान्तों में कम्युनिस्ट संगठन के तत्कालीन निरीक्षक साथी सरदेसाई ने अवसरवश इसे देख लिया था। राय दी थी कि यह उपन्यास उन्हें अंग्रेजी के प्रसिद्ध उपन्यास "For Whom the Bell Tolls ?" से अधिक अच्छा लगा। प्रगतिशील आलोचकों की बात पहले कह चुका हूँ। क्या उन की आलोचना को सर्वसाधारण जनता की प्रतिक्रिया का प्रतिनिधि मान लिया जाय ?

जब आलोचना का आधार सैद्धान्तिक न होकर केवल अहं प्रदर्शन का उन्माद (हिस्टीरिया) हो, तब उस "ऐ ! ऐ !!" का उत्तर क्या ? एक समय अति वामपक्ष में झुक कर सर्वसाधारण को विरोधी बना लेने की भूल हुई तो आज 'संयुक्त मोर्चे' के नाम पर, वास्तविक लक्ष्य की ओर संकेत करने को ही त्रात्सकीवाद बताया जा रहा है। संयुक्त मोर्चे का अर्थ है जनता के उद्बोधन और प्रगति के लिये यथा सम्भव विस्तृत समर्थन और सहयोग पाने का प्रयत्न। संयुक्त मोर्चे के नाम पर जनता के उद्बोधन और प्रगति के लिए प्रयत्न को बलिदान नहीं कर दिया जा सकता।

आज संयुक्त मोर्चे का रूप रूढ़िवाद और प्रतिगामी भावना की चापलूसी बन रहा है। यह संयुक्त मोर्चा नहीं बल्कि प्रतिगामिता के सम्मुख आत्म-समर्पण और पिछलग्गूपन है। त्रात्सकी उतना अज्ञानी नहीं था जितना कि अहम्मन्य, स्वार्थपर और बदनीयत ? त्रात्सकीवाद की राह क्रान्ति और जनहित के लक्ष्य की अपेक्षा अपने 'अहं' को अधिक महत्व देना है। यह बद-नीयती है। साहित्य मे भी त्रात्सकीवाद की पहचान यही है। जो लेखक या आलोचक एक ही कुलांच में, बिना किसी आत्मालोचन के अतिवाम पक्ष के मोर्चे के नेतृत्व से संयुक्त मोर्चे के नेतृत्व पर चौकस खड़ा हो जा सकता है उसे विचारक या चिन्तक नहीं कहा जा सकता। वह न तब ईमानदार था न अब है। यह करतब केवल पटेबाजी या व्यर्थ ताल ठोंकने की हुंकार मात्र है। ऐसे खलीफा कभी भूल स्वीकार नहीं करते सदा भूल सुझाने का ही दम भरते है।

आलोचना लेखक और साहित्यिक प्रगति के लिये बहुत सहायक हो सकती है बशर्ते कि नीयत नेक हो !

यशपाल

उत्तराधिकारी

दानपुर के इलाके की गरीबी के खयाल से हरसिंह का परिवार अच्छा खाता-पीता घर था। उस के बाप और चाचा ने पुश्तैनी जमींन बांटी नहीं थी। उस के चाचा के लड़के, दो छोटे भाई भी थे। घर में खेती के काम-काज के लिये आदमियों की कमी न थी। उतनी जमीन पर कितने आदमी काम करते ? पहाड़ के छोटे-छोटे खेतों में एक आदमी मेहनत करे या दो, फसल की निकासी में कुछ फरक नहीं पड़ता। मर्द खेत जोत कर औरतों के हवाले कर देते हैं और लुनाई तक वे ही उन्हें सम्भालती हैं। गोरू और भेड़, बकरी की रखवाली बच्चे ही कर लेते हैं। उन के सीधे-साधे जीवन की सभी आवश्यकताएं वहीं पूरी हो जाती हैं। अपने खेतों के मडुआ और चूआ का अनाज, गौओं से दूध-घी और घर की भेड़ों की ऊन से कता-बुना कपड़ा। मर्दों के कंधों से कमर तक, घर के बुने कम्बल का गाता लोहे के एक बड़े सुए से सम्भला रहता है। कमर ढंकने के लिये कभी हाथ भर, और कभी बालिस्त भर चौड़ा कपड़ा। स्त्रियां भी ऐसा ही गाता और नीचे मोटा लहंगा पहने रहती है। शौक किया तो गाते के सुए में चांदी की जंजीर लटका ली।

पहाड़ी देहाती के आपसी विनिमय में रुपये-पैसे की जरूरत प्राय: नहीं पड़ती। परन्तु कुछ काम है जो रुपये से ही पूरे होते हैं सरकारी माल-गुजारी, गहना, ब्याह-शादी का दस्तूर और कभी अदालत-कचहरी का काम,

रुपये के बिना निभ नहीं सकता। पर दानपुर में ऐसी कोई पैदावार या कारोबार नहीं जो रुपया लाये। जितना पैदा होता है, वहीं खप भी जाता है। दानपुर में रुपया आता है कुछ तो निगला की चटाइयों की बिक्री से और खास कर सरकारी खजाने से, सिपाहियों की तनखाहों के और पेन्शनों के रूप में। दानपुर की पट्टी खूब फैली हुई है परन्तु खेती और बस्ती कम, जंगल और पहाड़ ज्यादा। सरकारी खजाने से लगभग दो लाख रुपया सालाना तनखाहों और पेन्शनों के रूप में वहाँ आता है। इस रुपये का मूल्य दानपुरिये अपने जवानों की जिन्दगियों और खून से चुकाते हैं। दानपुरिया जवानों के गठीले, सबल और दृढ़ शरीर, उन की निर्भयता और भोलेपन के कारण ब्रिटिश साम्राज्यशाही की सेनाओं के लिये भरती करने वाले अफसर इन्हें सदा चाव और पक्षपात की दृष्टि से देखते रहे हैं। वहां विरला ही परिवार होगा जिस ने सेना को जवान न दिये हों। दानपुर के जवानों की हड्डियों से दूर-दूर देशों की भूमि उर्वरा हुई हैं। दानपुरियों के पास रुपया कमाने का दूसरा कोई उपाय है भी नहीं।

दानपुर में ब्याह कम उम्र में ही हो जाते हैं। हरसिंह का भी ब्याह जल्दी ही हो गया था। उस की बहू बारह बरस की हुई तो ससुराल आ गई। घर और खेती का काम बटाने को दो हाथ और हो गये। हरसिंह के चाचा के लड़के दो छोटे भाई भी थे। बहनें गईं तो बहुएं आने लगी। हरसिंह बीस बरस का हो गया था। वह रानीखेत जा अंग्रेज-सरकार-बहादुर की फौज में भरती हो गया।

हरसिंह के बाप और चाचा तो निभाते चले आ रहे थे परन्तु परिवार बढ़ा तो खटपट भी होने लगी। हरसिंह के चाचा के लड़कों का खयाल था, 'काम तो सब हम ही करते हैं, जमीन कहने को साझी है। ताऊ का लड़का पलटन में चला गया और उस की तनखाह ताऊ अपनी जेब में रख लेते हैं।' हरसिंह का बाप सोचता—'अब मैं लड़के की कमाई से खेत जमीन खरीदूं तो उस में हिस्सेदार दूसरे भी होंगे! आखिर, पंचायत में बटवारा हो गया।

हरसिंह बरस के बरस छुट्टी पर आता और अपनी बहू 'मानी' की भरती हुई जवानी देखता। हरसिंह की बहू पंद्रह बरस की हो रही थी। उस साल हरसिंह छुट्टी पा घर नहीं आ सका। पड़ोसी गांवों के दूसरे सिपाही भी बहुत कम घर आये। हरसिंह छुट्टी पर नहीं आया लेकिन पटवारी के

जाय ? हरसिंह के घर संदेश आया कि तुम्हारा लड़का लाम पर समुद्र-पार भेजा गया है। तुम डाकखाने जाकर उस की तनखाह ले लो। हरसिंह जब तक समुद्र पार रहेगा, हर माह इसी प्रकार तनखाह मिलती रहेगी।

मानी ने अपने आदमी के समुद्र पार लाम पर चले जाने की बात सुनी तो उदास हो गयी। पर उदास होकर बैठने से चलता कैसे? घर और खेती का काम तो करना ही था, उदासी हो या खुशयाली! और आंख की ओट जैसा एक कोस, वैसा सौ कोस। यों भी तो बरस में महीने भर को ही आता था।

दो बरस और बीत गये। मानी के शरीर पर ऐसी सुडौल जवानी फूट रही थी कि जिस के पास से गुजरती, एक आंख देखे बिना न रह पाता। गांव के और पड़ोसी गांवों के भी अधिकतर जवान सरकारी फौज में भर्ती थे; लेकिन गांवों में आदमी तो थे ही। मानी लोगों की आंखें पहचानने लगी और आंखों में देखने भी लगी। दिन भर की हाड़ तोड़ मेहनत में जरा हंस लेने, मुस्करा लेने से मन हलका हो जाता था। घर में बूढ़े-बुढ़िया के सामने कब तक मुह लटकाये बैठी रहे।

मानी के सास-ससुर उसे खेती और घर के काम-काज में या पशुओं के प्रति बेपरवाही के लिए डांटते ही रहते थे। अब सास लोगों से बोलने-चालने पर भी डांटने लगी। कुछ दिन तो मानी इस डांट-फटकार को कान के पीछे डाल चुप रह गई लेकिन जब उस के आने-जाने पर रोक-टोक लगने लगी, तो मानी ने भौंहे टेढ़ी कर जवाब दे दिया—"घर में रहने नहीं देती हो तो बता दो!....दो रोटियाँ ही तो खाती हूँ। मेरे लिये यहाँ क्या रक्खा है?....जब आयेगा उसे जो कहना होगा, कह लेगा?....तुम्हें भारी हो रही हूँ, तो कह दो; मेरे भी हाथ-पाँव चलते हैं....दुनिया बहुत पड़ी है।"

इस पर भी जब ससुर ने धमकाया तो सुबह पशुओं के लिये घास काटने जाकर मानी रात को भी न लौटी। ससुर उसे पड़ोस के गांव से खुशामद कर लौटा लाया। बूढ़ा बदनामी से डर गया और बेटा तो लाम पर गया है, यह भी चल दे तो पीछे खेती का काम कौन निभायेगा? घर मे दो-एक बच्चे भी नहीं कि गोरू ही रखा लेते। पानी, ईंधन और पशुओं के लिये घास-पात की मदद से भी जायें।

चार बरस बाद लाम खतम हुई। कुछ सिपाही लौटे और कुछ नहीं

लौटे। हरसिंह नहीं लौटा लेकिन उस की तनखाह बराबर मिलती रही ।. मिली वह लाम में जख्मी हो गया था, अस्पताल में है। चंगा होकर आयेगा.

इसी बीच एक दिन मानी के ससुर के पेट में मरोड़ उठी और वह चल बसा। बुढ़िया बेचारी हलियों से हल जुतवा कर बहू के साथ खेती निभा रही थी। मानी का मन नहीं लगता था। शरीर थकावट से बिखरा-बिखरा जाता था। वह मन को मारती परन्तु पड़ोसी, खांस कर जुहार, बेचैन कर देते''''वह बेबस हो जाती।

मानी फिर पड़ोस के गांव चली गई। जुहार उसे ढांटी (घरवाली) बैठाने को तैयार था; परन्तु मानी की सास ने जाकर पट्टी के रंगरूटी-हवलदार के सामने दुहाई दी कि उस का बेटा सरकार की नौकरी में खून बहा रहा है और लोग उस की बहू को भगा ले गये। सरकार हमारा इतना भी ख्याल नहीं करेगी ? रंगरूटी-हवलदार को भी पसन्द नहीं था कि जुहार अकेला मानी को संभाल कर बैठ जाये। हवलदार ने जुहार को धमका दिया। अब मानी से हँसने खेलने को तो बहुत लोग तैयार थे लेकिन उसे अपने यहाँ बसा लेने का साहस किसी को न था।

× × ×

हरसिंह ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा के लिये महायुद्ध मे लड़ता हुआ लगभग युद्ध समाप्त होने के समय बुरी तरह से जख्मी हो गया था। उस की कमर के आसपास लगने वाले जख्म बहुत पेचीदा थे। विषैली गैस का प्रभाव भी उस के स्वास्थ्य पर गहरा पड़ा था। प्रायः डेढ़ बरस तक फौजी-अस्पताल में उस का इलाज होता रहा। वह चलने फिरने के लायक हो गया, परन्तु मर्द नहीं रहा। अंग्रेज सरकार ने उस की वफादारी और युद्ध में खाये जख्मों से बेकार हो जाने के कारण उसे आधी नौकरी में ही पूरी पेन्शन दे कर छुट्टी दे दी।

हरसिंह पूरे साढ़े चार बरस बाद गांव लौटा। लौट कर देखा, उस का बूढ़ा बाप नहीं रहा था। घर में उस की मा बहू और उस का एक लड़का मौजूद था। अपनी अनुपस्थित में हो गया लड़का देख हरसिंह क्रोध से झल्ला उठा। उस ने सोचा, लड़का उस का होता तो चार बरस से ज्यादा का होता। बच्चा था केवल दो बरस का। हरसिंह की मां ने माथे पर हाथ मार कर कहा—"''''तो मैं क्या करती ?''''मैं ही जानती हूँ जैसे मैंने इस चुड़ैल को नथिया कर रोके रखा। अब वह सब जाने दे ! तू भी तो ऐसे वक्त चला गया''''।

जाय ! जवानी का अंधड़ था। कौन नहीं जानता बरसात की पहली आंधी कांड़ गिरा ही करते हैं। अब ढंग से निभा ! लड़का है तो जवान भी होगा। अब तेरा ही है......"

हरसिंह ज्यों-ज्यों इस बारे में सोचता, उस के सिर में खून चढ़ता जाता। उस का व्यवहार मानी से ऐसा था जैसे जेलर का अपराधी से होता है। मानी सिर झुकाये चुप रह जाती या रो देती। जहाँ तक बन पड़ता, वह पति की आँखों से ओझल रह कर घर या खेती के काम में उलझी रहती। कभी हरसिंह मानी पर हाथ छोड़ बैठता। मानी वह भी सह जाती परन्तु हरसिंह का गुस्सा बढ़ता ही जा रहा था। वह मानी की हर बात पर आग बबूला हो जाता। बात-बात में बच्चे को ठोकर मार देता। मानी और तो सब सह जाती: पर बेकसूर बच्चे पर मार न सह सकती।

मानी ने बच्चे को मारने पर एतराज किया। हरसिंह और भी बिगड़ उठा—"मैं अभी तुझे और तेरे इस हरामी को काट कर फेंकता हूं ......।"

हरसिंह सचमुच छत की धन्नी में खोंसे हुए लकड़ी काटने के दांव की ओर लपका। मानी के शरीर से मानों सारा रक्त खिच गया; परन्तु प्रतीक्षा कर गिड़-गिड़ाने का अवसर नहीं था। अपने बच्चे को छाती से चिपटा कर वह पूरी शक्ति से भाग गयी।

हरसिंह जब धन्नी से दांव खींच कर लौटा तो मानी बच्चे को लेकर भाग चुकी थी। उतना तेज भाग कर जवान मानी को पकड़ लेना हरसिंह के सामर्थ्य में नहीं था। होंठ काट कर उस ने सोचा,...... भाग गई ! खैर जब लौटेगी !....

मानी सांझ तक नहीं लौटी। मां ने रोटी सेंक दी परन्तु हरसिंह खा नहीं सका। वह पुआल पर कम्बल बिछा कर लेटा तो दांव सिराहने रख लिया। मानी की दुष्टता का बदला लिये बिना वह जिन्दा रहने को तैयार न था। जब मानी आधी रात तक भी न लौटी तो उसे निश्चय हो गया, अब नहीं आयेगी। सोचा-- जुहार के यहाँ गई होगी। जाय ! मैं हरजाई को अपने यहाँ नहीं रक्खूंगा !

दूसरे दिन भी मानी नहीं लौटी, तो हरसिंह ने टोह ली। वह सचमुच जुहार से यहाँ गई थी। वह जुहार के यहाँ पहुँचा। जुहार और उस का भाई हाथ में दांव लेकर सामने आये और बोले—"बोल क्या करेगा ?"

हरसिंह ने कहा—"अच्छा, पंचों में फैसला होगा।"

हरसिंह ने पंचायत कराई। पचों ने तम्बाकू और 'जाग'* का सत्कार पाकर फैसला दिया—मानी हरिसिंह की व्याहता औरत है। जुहार मानी को ढांटी (घरवाली) रखना चाहता है तो हरसिंह की इज्जत का हर्जाना यानी जर जेवर की कीमत १००) दे।

हरसिंह ने भरी पंचायत में जुहार से १००) लेकर अपनी इज्जत तो बचा ली परन्तु उस के मन पर लगा घाव पूरा नहीं हुआ।....पर जिन्दगी तो निभानी ही थी। वह चुपचाप जानवरों और खेती का काम करने लगा। अकेले आदमी के लिये काम इतना था कि दिन भर किये पर भी पूरा न होता। हरसिंह के लिये यह ही अच्छा था। बूढी माँ और बेटा दिन काटने लगे। वे न आपस में बोलते और न किसी दूसरे से ही।

× × ×

मानी को गये तीन बरस हो चुके थे। हरसिंह ने सब तरफ से ध्यान हटाकर अपनी जमीन में ही आंखें गड़ा दी थीं। सरकारी कायदे से उस ने अपनी जमीन से लगती बेनाप जमीन तोड़ कर पाँच नाली खेत और बना लिये। अपनी दोनों भैंसों का घी जमा कर बेचता रहा और तीन बरस की पेन्सन का रुपया जमा कर उस ने वारिसों से भी पांच नाली खेत और खरीद लिये।

गांव के लोग उस की इन बातों पर हंसते, '.........अकेली तो जान है। किस के लिए कर कर के मर रहा है। चरस की चिलम के लिये एक पैसा भी खर्चने मे जान निकलती है।' वारिसों ने भी इसी ख्याल से जमीन सस्ती दे दी कि मुफ्त का रुपया दे रहा है तो क्यों न ले ?....इस के आंख बन्द करने पर तो जमीन अपनी ही होगी। दस नहीं तो पन्द्रह बरस और जोत लेगा, फिर तो इस की कमाई अपने ही बाल-बच्चों के हाथ आयेगी।...इस का कौन है ?....... क्या छाती पर रख कर ले जायगा ?

उस के वारिसों और गांव वालों ने सुना कि हरसिंह इस उम्र मे ढांटी के लिये औरत ढूढ़ रहा है तो हैरान रह गये। जाड़े के दिनों में जब खेती, फसल और ईंधन कटाई का कोई काम नहीं था, हरसिंह छः-सात दिनों के लिये

*स्थानीय चावल की शराब

जाय की तरफ गया। एक महीने के बाद फिर छः सात दिन के लिये उधर को और सचमुच एक तेईस-चौबीस बरस की, कुछ बीमार सी, दुबली-पतली सी जवान खूबसूरत औरत को ले आया।

गांव के लोग हैरान रह गये और हरिसिंह के वारिसों के कलेजे पर तो सांप लोट गया। लेकिन क्या कर सकते थे। हरिसिंह ने पंचायत में कह दिया कि हर्जाना भर के यानी ज़र-जेवर की कीमत तार कर औरत को लाया है। लोगों ने हर्जाने की रकम तीन सौ सुनी तो हैरान रह गये।

कपकोट के पास हरिसिंह ने एक रात जिस किसान के यहाँ डेरा किया था, रात में तम्बाकू पीते हुये उसी को अपनी परेशानी कह सुनाई कि इतनी जमीन, गोरू और धन (भेड़, बकरी) है लेकिन वह पलटन में था तो उस की घरवाली को लोग बहका ले गये। वह घर बसाने के फेर मे है।

उस के यजमान (मेज़वान) किसान ने सिर पर हाथ मार अपना दुखड़ा सुनाया कि उस ने अपनी लड़की कुशली नरमा गाँव के अच्छे खाते-पीते किसान को व्याही थी। बेचारी के दो बच्चे भी हुये पर देवता की माया से दोनों जाते रहे। उस कमबख्त ने दूसरा व्याह कर लिया है और उन की लड़की को दूर गांव की अपनी जमीन में डाल दिया। उसे····बुरी आदतें हैं, शराब पीता है, जुआ खेलता है। कर्जे में 'सीगल' की अपनी जमीन बेच दी कुशली को सौत के यहाँ ले गया। सौत उसे सहती नहीं। कहती है, अपने बच्चे खा गई; इस की छाया मेरे बच्चों को बुरी है। एक रोज उसे दोनों ने मारा। बेचारी रोती हुई आकर मायके बैठ गई।

हरसिंह कुशली के आदमी को ज़र-जेवर का खर्चा देकर कुशली को ढांटी बसाने के लिये तैयार हो गया। उस ने बूढ़े से कहा,—"तू उस के आदमी से बात कर ले, मैं खर्चा लेकर आता हूँ।"

कुशली का आदमी औरत से जान छुड़ाना चाहता था लेकिन हर्जाना मांगा, तो इतना ज्यादा! हरसिह ने पंचों के सामने हर्जाना गिन दिया और कुशली को ले आया।

हरसिंह के यहां आकर कुशली पनप गई। उस के चेहरे पर भी सुर्खी आ गई। वह खुशी-खुशी घर और खेती का काम करती। हरसिंह उसे बड़ी खातिर से हाथों-हाथ रखता परन्तु उस की गोद भरने का कोई लक्षण दिखाई नही दे रहा था। गांव के जवान उस से भाभी का रिश्ता जोड़ कर

उच्छृंखलता दिखाते। वह ओंठ दबा कर आँख फेर लेती। उसे चिढ़ा.. लिये गांव की औरतें हरसिंह की कमर में गोली लगने की बात बता व कहती—"........यों ही ब्याह किया इस ने तो !"

कुशली के पास एक ही जवाब था—"तो फिर तुम्हें क्या ?"

उस बरस जाड़े की फसल बो देने के बाद हरसिंह अलमोड़ा गया। वह जानता था कि डाक्टर लोग चीर-फाड़ के अलावा और कुछ नहीं जानते लेकिन न देशी वैद्य-हकीमों के पास ऐसी जड़ी-बूटी होती है कि जो चाहें कर दें ! एक 'खानदानी' वैद्य जी ने उस से इक्कीस रुपये लेकर इक्कीस पुड़िया ऐसी दवाई दे दीं कि लोहा खाले तो पच जाये और पत्थर में छेद कर दे........।

लौट कर लोगों के हँसने की परवाह न कर हरिसह ने कुशली का बाँझ-पन दूर करने के लिये देवता का जागर भी कराया। कुशली चुप रही। क्या कर सकती थी ? सोचा देवता की करनी का क्या अन्त !

जब एक बरस और निष्फल बीत गया तो हरसिंह ने कुशली को समझाया—"बालेश्वर के देवता की सब से बड़ी मानता है। तू वहाँ जाकर दिया जला आ !"

कुशाली ने उसे समझाया—"क्यों हंसी कराते हो ? तुम्हारे चोट लगी है तो क्या हो सकता है ?"

परन्तु हरसिंह का इस तर्क से समाधान नहीं हुआ।........वह सब खेत जमीन आखिर किस के लिये थे ? वह सन्तान चाहता था। उसे सन्तान की उत्कट चिन्ता थी जैसी महाराज दशरथ को अपना सिंहासन सूना हो जाने की आशंका से और महाराज शान्तनु को अपना वंश निर्मूल हो जाने के भय से। वह 'पुत्रेष्टि यज्ञ' कैसे न करता ? उस ने कुशली को समझाया, क्या यह सब काम मकान, गोरू, खेत, जमीन दूसरों के लिये छोड़ जायेंगे ?

बैशाख-पूर्णिमा के दिन बालेश्वर महादेव की पूजा का अपार महात्म्य होता है। हरसिंह ने कुशली को ले जाकर उसी अवसर पर दिया जलाने का निश्चय किया था। परन्तु भाग्य की बात; एक विषैला कांटा हरसिंह की पिंडली में चुभ जाने के कारण उस का पांव इतना सूज गया था कि उस के लिये चलना असम्भव हो गया।

हरसिंह ने कुशली को समझाया—"देवता के यहां जाने का संकल्प किया है तो उसे झूठा करने से देवता का कोप होगा।......जाने क्या अनिष्ट हो

जाय ! तू अकेली ही जा। तू देवता की ड्योढ़ी को जा रही है तो वही रक्षा करेगा। बालेश्वर में मेला है। तू लंहगे का कपड़ा और दो चार चीज गले और हाथ की भी खरीद लेना। डर किस का है ? अंग्रेज है। सड़कों पर हर-दम आदमी चलते हैं। मुसाफिरदुकानों में ठहरते ही है। तकलीफ न करना। चाहे जितना रुपया ले जा - दस, बीस, पचास ! अपना यह सब कुछ है किस के लिये ? जब घर में अंधेरा है तो धन-जमीन का क्या ?"

इतना लम्बा सफर अकेले करते कुशली का मन सहम रहा था परन्तु जब आदमी न माना तो क्या करती ? बेचारी चली। जिस राह हरसिंह के साथ नरमा से आई थी, उसी राह चली जा रही थी। कुछ दूर जाने पर अलमोड़ा जाते स्त्री पुरुषों का साथ हो गया और फिर मेले मे जाने वाले यात्री मिलने लगे।

बैशाख पूर्णिमा के दिन बालेश्वर में बांझ स्त्रियां अंजली में दीप जलाकर मन्दिर के द्वार के सामने जल में दिन रात, चौबीस घंटे दीपक की ओर टक-टकी लगाये खड़ी रहती है। इस कड़ी तपस्या से स्त्रियों के सिर में चक्कर आ जाता है। वे डगमगा जाती हैं। ठन्डे पानी मे पांव सुन्न हो जाने से वे गिर पड़ती हैं। तपस्या भंग हो जाने से केवल देवता का बरदान नहीं मिलता, वरन् देवता के शाप का भय रहता है। इसलिये तप करने वाली स्त्रियों के घर की स्त्रियां और सम्बन्धी उन्हें कंधों और पीठ से सहारा देने के लिये साथ खड़े रहते हैं।

कुशली बेचारी अकेली थी। उसे कौन सहारा देता। परन्तु वह आई थी सन्तान मांगने; दिया ले कर तप करने खड़ी कैसे न होती ! जब और स्त्रियां अंजली में दीपक ले कर मन्दिर के सामने खड़ी हुई तो वह भी खड़ी हो गई।

घड़ियों-पर-घड़ियां बीतने लगीं। कुशली अंजली में दीपक लिये, लौ की ओर टकटकी लगाये खड़ी थी। आस-पास खड़ी जवान लड़कियां और स्त्रियां डगमगाने लगी और लोग उन्हें सहारा देने लगे। कोई-कोई रोने और चिल्लाने भी लगी, परन्तु उन के सम्बन्धी उन्हें थामे रहे। कुशली को सहारा देने वाला कोई नहीं था। वह पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ी रही। आधी रात समय बाद उसे जान पड़ने लगा कि उस की पिंडलियां बरफ के पैने फलों से कटी जा रही हैं। वह तना कट जाने से गिर जाने वाले पेड़ की तरह गिर

पड़ेगी । उस ने अपने दांत दबा लिये, वह नहीं गिरेगी । उसे अनुभव हुआ उस का शरीर हिल रहा है । उस ने निश्चय किया, वह डिगेगी नहीं । कुशली को मालूम हुआ— सामने का मन्दिर हिलने लगा, हिलकर कबूतर की तरह तालाब के चारों ओर उड़ने लगा, पहाड़ भी झूले की चरखियों की तरह घूमने लगे; परन्तु वह कहती रही कि वह गिरेगी नहीं……! फिर उस ने सहायता के लिये पुकारा परन्तु होंठ खुल नहीं पाये । उसे अपनी अंजली का दीपक दिखाई नहीं दे रहा था । आंखों के सामने बादल आ गये थे…वह गई !……फिर मालूम हुआ कि थम गई । किसी ने उसे थाम लिया; उसे जान पड़ा, देवता ने उसे थाम लिया ।

जब जोर-जोर से घंटे-घड़ियाल और शंख बजने लगे तो उसे मालूम हुआ कि उस की अंजली से दीपक हट गया । कोई उसे घसीट कर जल के बाहर ले जा रहा है, कोई उसे थामे हुए है । वह जमीन पर बैठा दी गई । कोई जोर-जोर से उस के पावों और पिंडलियों को मल रहा है । वह अनुभव कर रही थी; परन्तु उस के न हाथ हिल सकते थे और न होंठ ।

कुशली के कानों में सुनाई दिया—"ले चाह पी ले ।' गरम-गरम चाय उस के होठों से लगी और जीभ तक बह गई । गले में पहुंचने पर गले ने घूंट भर लिया । तब उस के होंठ और घूंट भर सके ।

जब कुशली को दिखाई देने लगा, उस ने देखा कि कोई एक आदमी उस का सिर मल रहा है और कभी उस की पिंडलियों को मलने लगता है । वह सिमट गई । मुंह से बोले बिना उस ने आदमी के हाथ हटा दिये ।

आदमी ने हंस दिया और बोला—"थाम नहीं लेता तो गिर नहीं पड़ती ?"

कुशली ने अधखुली आंखों से उस की ओर देख कर आंखें झुकालीं; मानो कह रही हो, ठीक कहता है. तूने बड़ी दया की ।

सूर्य की किरणें जमीन पर फैल गई थी । कुशली को इन किरणों से आराम मिल रहा था । वह अपनी पीठ किरणों की ओर कर लेटी रही ।

वह आदमी अपना कम्बल वहीं छोड़ उठ कर कुछ दूर गया और लौटा तो पत्ते पर गरम जलेबी लिये था । बोला—"ले यह खा ले । जिस्म में गरमी आ जायगी ।"

कुशली धूप में मन्दिर के हाते की दीवार से पीठ लगा बैठ गई और जलेबी खाने लगी । अब सुध आने पर कुशली ने उसे पहचाना ।……पिछले

ी पड़ाव से यह आदमी यात्रियों में उस के साथ ही था। कुशली को अकेले देख कर उस ने पूछा था, "तू इतनी दूर से अकेली कैसे आई ?"

उस समय कुशली ने जवाब दिया था—"ऐसे ही !........तुझे क्या ?" परन्तु अब वह बात करने लगा तो कुशली सब कुछ बताती गई।

दोपहर तक कुशली की तबियत ठीक हो गई तो उस आदमी ने कहा,—"जरा उठ, चल मेला देखें।"

कोई औरत अकेले नहीं घूम रही थी। कुशली भी उस आदमी के साथ घूमने लगी। उसे देवता की पूजा ठीक से हो जाने का संतोष था। उस ने लहंगे का कपड़ा खरीदा, गिलट के खड़ुए और पीतल का मुलम्मा चढ़ा गुलूबन्द भी। वह आदमी रखवाली में उसी के साथ बना रहा कि कोई उसे ठग न ले। जैसे वह उसी का आदमी हो। कुशली को झेंप मालूम होती; पर अच्छा भी लगता। अकेले भी तो अच्छा नहीं लगता।

रात गये तक मेला होता रहा। जगह-जगह गैस जल रहे थे। कुशली को जान पड़ रहा था कि दिन से ज्यादा और अच्छी रोशनी हो रही है। उस आदमी ने कुशली को सेउ, पूरियां और मिठाई खिलाई। ऐसा तमाशा और मजा कुशली ने कभी नहीं देखा था। वह कभी थक कर उस आदमी के साथ बैठ जाती और कभी घूम कर तमाशा देखने लगती।

नींद का समय आया। कुशली राह में जिन यात्रियों की भीड़ के साथ आयी थी, उन्हे खोजने लगी। गनेरसिंह ने, यही उस आदमी का नाम था, कहा, "अरे, क्या ढूंढती है। कौन वो तेरे सगे है ?"—चारों तरफ पेड़ों के नीचे लेटे आदमियों की ओर संकेत कर उस ने कहा—"हम लोग भी ऐसे ही कहीं एक तरफ पड़ रहेंगे।"

"नहीं'—कुशली ने कहा, उसे डर सा लगा।

गनेरसिंह ने जिद्द की—"हमारी इतनी सी बात नही मानेगी ?"—कुशली चुप रह गई तो उस ने धीमे-से मजाक किया—"तो फिर इतनी तकलीफ करके दिया क्यों जलाया था ?........देवता का वरदान खाली जायगा ?"

कुशली को लज्जा से मधुर कंप-कंपी-सी आ गई। "हट्ट"—उस ने सिर झुका पीठ फिरा कर कहा और चुप रह गयी।

दूसरे दिन एक पहर दिन चढ़े वे दोनों मेले से चले तो गीत गाते लोगो

की भीड़ के साथ नहीं, पीछे-पीछे, अलग-अलग से चल रहे थे। कुशली जानती थी उसे मीलों चल कर फिर हरसिंह के ही पास जाना है। लेकिन इस आदमी का साथ अच्छा लग रहा था। उस का बोल, उस की नजरें उस के पसीने की गन्ध; सुहानी-सुहानी! मर्द जैसी। कुशली को ऐसा जान पड़ रहा था, देवता की तपस्या से पाया बरदान उस पर छाकर उस के शरीर को बोझिल और शिथिल किये दे रहा हो। वह बोझ ऐसे ही प्यारा लग रहा था। जैसे भारी गहनों का बोझ हो। वह बैठने की जगह देख बार-बार बैठ जाती। वह इतनी शिथिलता से चली कि बड़ी कठिनता से वे एक ही पड़ाव पार कर सके।

अगले दिन गनेरसिंह ने अधिकार के स्वर में कहा - "अब तू दानपुर की बीहड़ पहाड़ियों में कहां जायगी? मेरे घर चल। मेरी सैणी (घरवाली) पिछले साल डेड़ बरस का लड़का छोड़ कर मर गई है। उसे भी पालना और अपने पेट को भी!····मेरी पच्चीस नाली जमीन है, भैंस है गाय है, बैल है। तू मुझे देवता ने दी है। चल कर मेरा घर बसा।····मैं तुझे नहीं जाने दूंगा!"

कुशली रो पड़ी; परन्तु इस रोने में अभिमान और सुख था और फिर उदास होकर बोली—"नहीं, मैं तो जाऊंगी। वो भला आदमी है! – गम करेगा। उस ने मेरी ढांटी के तीन सौ दिये हैं।"

गनेरसिंह नहीं माना—"वो क्या तेरा आदमी है·····? तेरा आदमी तो मैं हुं। मुझे गम नहीं लगेगा। मै तेरी ढांटी का हर्जाना भर दूंगा. चाहे जितनी जमीन बेंच दूं।"—उस ने कुशली को बाहों मे कस लिया, और बोला—"बोल, मेरा घर उजाड़ेगी?·······मेरी नहीं है तू?"

कुशली बोल नही पाई, चुप रह गई। उसे हरसिंह का बहुत ख्याल था; पर गनेरसिंह का जिद्द से अभिमान अनुभव हो रहा था। वह उस के साथ चली जा रही थी। दिल कहता था, दानपुर चल; पांव चले जा रहे थे गनेरसिंह के गांव की ओर।

× × ×

बारह दिन बीत गए और कुशली बालेश्वर से नहीं लौटी, तो हरसिंह को चिन्ता होने लगी। पन्द्रह दिन भी बीत गए तो वह परेशान हो गया। मन को समझाता, राह में मांदी ही पड़ गई हो; दो-चार दिन में आती होगी। उसे रात-रात भर नींद न आती। सोचता – क्या हो गया उसे, कहां

चली गई ? यहां ही लोग उसे तकते रहते थे। थी तो बड़ी भली ! ……
आखिर है औरत की जात ?

हरसिंह को निश्चय हो गया कि कुशली चली गई और सिर्फ औरत नहीं उस का देवता से पाया उत्तराधिकारी लड़का भी चला गया। उसे जख्मी होने के कारण अपने शारीरिक असामर्थ्य का भी ख्याल आता, परन्तु फिर अपने अधिकार की बात सोचता—है तो मेरी औरत ! उसे यह भी पछतावा हुआ कि उस ने भरी गोद मानी को घर से क्यों निकाल दिया था। आज उस का लड़का कितना बडा हो गया है ? गोरू चराता कितना अच्छा लगता है ? उस लड़के को देख कर हरसिंह के मन में स्नेह उमड़ने लगता। पर उस की बात कर के अपनी हंसी कराने से क्या लाभ था ?

हरसिंह का पांव अब ठीक हो गया था। वह कुशली का पता लगाने बालेश्वर की ओर चल दिया। पन्द्रह दिन बाद लौटा तो अकेला, चेहरे पर, गहरी थकान और परेशानी लिये। खेतों में फसल तैयार हो रही थी; इस, लिये बहुत दिन के लिए घर नहीं छोड़ सकता था। उस की बूढी मां के हाड़-गोड़ अब कठिनता से चलते थे। वह दस-पन्द्रह मील के चक्कर में घूम कर पता लेता रहा। जेठ में मंडुवा बो देने के बाद उस ने जानवरों की रखवाली बुढिया के सिर छोड़ी और रंगोड़ की ओर चालीस मील का चक्कर लगा आया; पर निष्फल।

उस के गांव वालों और वारिसदारों ने समझाया कि जो औरत तेरे घर नहीं बसती उस के पीछे तू क्यों परेशान है। हां, इस बात में सब सहमत थे कि कुशली को जो रक्खे, वह हरसिंह का हर्जाना भरे। परन्तु मालूम तो हो कि बालेश्वर से कुशली को कौन, कहां ले गया ? अगर अलमोड़ा-रानीखेत की राह हलद्वानी पार कर देश में उतर गई तो फिर क्या पता चलता है ? शहर के बीहड, गुंजानों में कहीं आदमी की गिनती हो सकती है; या उस के ठौर ठिकाने का पता लग सकता है ? लेकिन हरसिंह हाथ-पर-हाथ रख बठने के लिए तैयार नही था। उस के वारिस निशंक थे कि उस के औलाद हो नहीं सकती। इसलिये उसे प्रसन्न करने के लिए कुशली का पता लगाने के लिये तैयार हो गया।

सवा-बरस बीत चुका था कुशली को गए। पड़ोस के गांव 'सौवट' का ब्राह्मण कृपादत्त पिठौरागढ़ किसी गवाही में गया था। उस ने लौट कर

हर्सिंह को खबर दी कि 'मैं कटेरा गांव के पड़ोस से गुजर रहा था तो बा.. में कुशली घास का बोझ लिए मिली थी। मैंने पूछा, "कैसे चली आई ?" पहले चुप रह गई, फिर आंखों में आंसू भर बोली—"जब तक वहां थी तो भली थी, अब आ गई तो आ ही गई।"—तुम्हारे लिये कहती थी—"आदमी तो बेचारा भला है परन्तु सब लोग जानते हैं कि अंग-भंग है।"

"मैंने कहा कि हर्सिंह का हरजाना तो मिलना चाहिए तो बोली—"जो मुझे लाया है, वह हरजाना भरेगा क्यों नहीं ? नहीं होगा, जमीन बेच कर भरेगा। अब मैं क्या करूँ ?"—उस की गोद में लड़का भी है। उस के आदमी का नाम ठिकाना सब पता ले आया हूँ। अदालत में हरजाने का दावा कर दे। औरत का अब क्या है, वहां बस गई। उस आदमी से उस का लड़का भी है। अब उसे गनेरसिंह की ही औरत समझ। पर तेरा हरजाना तो मिलना चाहिए। तीन सौ कम भी तो नहीं होता।"

हर्सिंह ने सब बात ध्यान से सुन कर कहा:—"देखूँगा महाराज !"

फसल का मौका था इसलिए हर्सिंह चुप रहा। लोगों ने समझा, मन मार गया; परन्तु हर्सिंह माना नही था। उस ने अवसर देख कर अपने गांव के तीन-चार आदमियों को लिया और कटेरा पहुंचा।

गनेरसिंह ने कहा—"भाई मैं झगड़ा नहीं करता। तू अंग-भंग है। औरत अपनी खुशी से मेरे साथ आई है। पंचायत जो कहे, हरजाना भरने को तैयार हूं।"

हर्सिंह ने सिर हिलाकर कहा—"मैं हजार रुपया भी हरजाना लेने को तैयार नही। मै तो अपना लड़का लेने आया हूँ।"

"तेरा लड़का ?"—गनेरसिंह विस्मय से होंठ और आँखें फैलाये रह गया।

आखिर पंचायत बैठी। हर्सिंह बच्चे को मांग रहा था।

पंचों ने कहा—"बच्चा तुम्हे कैसे दिला दें। औरत के तेरे घर से जाने के बरस भर बाद लड़का हुआ है। लड़का तेरा कैसे होगा ?....औरत तेरे साथ जाने को तैयार नहीं। कोई भैस-बकरी तो है नहीं, जो बाँध कर भेज दे। हां, तू हर्जाने का हक़दार है।"

हर्सिंह ने पंचों से न्याय मांगा—"पंचों, जब तक मेरा हर्जाना नहीं मिला, औरत मेरी रही। हरजाना मिलने के बाद लड़का होता, तो मेरा नहीं था।"

पंचों ने कहा—"औरत तेरी थी; पर तेरे घर में तो नहीं थी।"

हरसिंह ने फिर दुहाई दी। उस ने जमीन पर लकीर खींच कर कहा—"पंचों, न्याय करो! यह जमीन लकीर से इस पार मेरी और लकीर से उस पार गनेरसिंह की। मेरे खेत की ककड़ी की बेल फैल कर गनेरसिंह के खेत मे चली गई। बोलो पंचो, ककड़ी किस की मानोगे?.......जिस की बेल उस की ककड़ी.......जिस की औरत उस का बच्चा! हरजाना देने से पहले औरत को गनेरसिंह की ढांटी मानते हो, तो बच्चा उस का! मैं अपना लड़का लूंगा। लड़के की मां आती है, मेरे सिर-आंखों पर आये; नहीं आती, उस का मन! मै हरजाने का एक पैसा मांगू, तो मेरे लिए गाय का खून! पंचो, यह परमेश्वर का न्याय है, नहीं तो अंग्रेज बहादुर की अदालत है। पंच न्याय नहीं देंगे, तो हरसिंह अंग्रेज की अदालत में जायेगा। मेरा घर-बार है, जमीन जायदाद है, मै लड़के के बिना मरूंगा?... मुझे पानी की अंजली कौन देगा?"

पंचों ने एक-दूसरे को ओर देखा और स्वीकार कर लिया कि जब औरत हरसिंह की थी तो लड़का भी हरसिंह का है।

कुशली एक ओर बैठी थी। पंचों का फैसला सुना, तो बच्चे को छाती से चिपटा कर चीख उठी—"मै अपना बच्चा किसी को नहीं दूंगी।"

हरसिंह के स्वर में क्रोध नहीं था, धमकी नहीं थी, पंचायत का न्याय जीत लेने का अभिमान भी नहीं था। मुलायम शब्दों में उस ने कुशली को समझाया—"अरी भागवान, तेरा बच्चा कौन छीनता है तुझ से? अपने घर चल। तू उस घर की मालकिन है!"

हरसिंह अपने एक बरस के उत्तराधिकारी को बड़े लाड़ और सन्तोष से गोद में उठाये दानपुर की ओर चला जा रहा था। कुशली उस के पीछे पीछे चली आ रही थी। जैसे नई ब्याई गैया अपना बछड़ा उठाये ग्वाले के पीछे चली जाती है।

जाब्ते की कारवाई

मास्टर शर्मा नैतिक ढंग के आदमी हैं, जिसे अंगरेजी में "कानशियेन्शस टाइप" कहते हैं। इसलिए पुलिस और सार्वजनिक-कार्यविभाग (पी० डब्ल्यु० डी०) में अनेक सम्बन्धी होते हुए भी शर्मा ने उन अवसरप्रद और कमाऊ महकमों को छोड़ कर मास्टरी का ही पेशा स्वीकार कर लिया।

आमदनी कम होने पर भी शर्मा सन्तुष्ट थे। अपने काम को उत्तरदायित्व से और बहुत हद तक अपना ही काम समझ कर पूरा करते थे। इन्टरमीडियेट कालेज के विद्यार्थी उन्हें अपना शासक अनुभव न कर सहायक समझते थे और उन का मान करते थे। प्रिंसिपल साहब भी शर्मा की उत्तरदायी और मेहनती प्रकृति की प्रशंसा करते रहते पर इतनी नहीं कि शर्मा को अभिमान हो जाये। और यथा अवसर उस से स्वयं लाभ भी उठाते। जिम्मेवारी का काम शर्मा को सौंप कर वे निश्चन्त हो सकते थे।

स्कूल-कालिजों मे विद्यार्थियों के लिये सैनिक-शिक्षा का कार्यक्रम जारी किया गया तो शर्मा जी के लिये एक और काम बढ़ गया। वे अपने स्कूल के सैनिक-शिक्षक भी बना दिये गए। जब तक उन्हें सैनिक शिक्षा दे सकने यानी अफ़सरी करने की शिक्षा पाने के लिए अपने स्कूल से छुट्टी के दिनों को सैनिक कैम्पों में बिताना पड़ता। इस के साथ ही अपने स्कूल में लड़कों को दी जाने वाली वर्दियों की देख-भाल और हिसाब-किताब का बोझ भी सम्भालना पड़ता।

गर्मियों की छुट्टियों के लिए स्कूल शनिवार से बन्द होने वाले थे। छुट्टी

से पहले वर्दियों को गिन कर गोदाम मे बन्द कर देना ज़रूरी था। वर्दियों को गोदाम में बन्द करने से पहले शर्मा जी ने उन्हें धुलवाने के लिए स्कूल के धोबी रमजान को दिलवा दिया था।

जब रमजान वर्दियां समय पर लौटा कर न लाया तो शर्मा जी को चिन्ता हुई उन्होंने छुट्टियाँ शनिवार से आरम्भ होने के भरोसे अपनी बहिन का विवाह अगले ही सप्ताह में निश्चित कर देने के लिये देहात मे अपने घर एक महीना पहिले ही लिख दिया था।

उन्होंने स्कूल के चपरासी को रमजान धोबी के घर भेज कर पता लिया। चपरासी खबर लाया कि धोबियों के मुहल्ले मे चेचक फैली हुई है। रमजान के बच्चे और वह स्वयं भी चेचक मे पड़ा है। वर्दियाँ धुली-धुलाई धोबी के घर पड़ी है परन्तु दे कौन जाय ?

यह समाचार पाकर शर्मा को दूसरी चिन्ता ने आ घेरा। चेचक के कीटाणुओं से दूषित यह वर्दियां स्कूल खुलने पर लड़कों को कैसे दी जायेंगी ? धोबी के यहाँ ले आने पर इन वर्दियों को दवाई के पानी में उबलवा कर, दोबारा धुलवा कर रोग के प्रभाव से मुक्त करना आवश्यक होगा। इस काम में तो हफ्ता-दस दिन लग जा सकते है। इतने दिन वे ठहर कैसे सकते थे ?

शर्मा ने सोचा, सब स्थिति प्रिंसिपल साहब के सामने रख देना ठीक होगा। प्रिंसिपल साहब छुट्टियों में भी स्कूल के समीप ही सरकारी बँगले में रहते है। उन के कहीं बाहर जाने की भी बात न थी। जायेंगे भी तो यह काम स्कूल के क्लर्क या चपरासियों को सौंप सकते हैं। आखिर जिम्मेवारी तो उन्हीं की है। कपड़ों को कीटाणुमुक्त (डिसइन्फेक्ट) कराने मे और धुलवाने मे जो व्यय होगा, उस की मंजूरी भी तो प्रिंसिपल साहब ही दे सकते है।

शनिवार सुबह ही शर्मा प्रिंसिपल के बंगले पर पहुंचे। सम्पूर्ण स्थिति समझा कर अपनी विवशता प्रगट की कि अगले ही हफ्ते गाँव में उन की बहिन का विवाह निश्चित है। इसलिए उन का पीछे टिके रहना सम्भव नहीं।

प्रिन्सिपल साहब अनुशासन की दृढ़ता के लिए प्रसिद्ध हैं। शर्मा का लम्बा बयान सुन माथे पर त्योरियाँ चढ़ाकर मेज़ पर हाथ मार उन्होंने प्रश्न किया—"धोबी कपड़े नहीं ला सकता तो क्या स्कूल के चपरासियों से नहीं मंगाये जा सकते ?"

फिर मेज़ पर निचयात्मक घूंसा जमा कर उन्होंने हुक्म दिया—मैं आज

दोपहर तक गोदाम की चाबी चाहता हूँ। कपड़ों को ठीक से धुलवाने की जिम्मेवारी सैनिक-शिक्षक की है, प्रिन्सिपल की नहीं। इस विषय में हम कुछ सुनना नहीं चाहते। हम आज शाम पांच बजे की गाड़ी से मंसूरी जा रहे हैं। स्कूल का सब सामान गोदाम में पहुँच कर हमें चाबियाँ तीन बजे तक मिल जानी चाहिए और रजिस्टर में सब अंदराज़ पर हमारे दस्तखत हो जाने चाहिए।"

शर्मा स्तब्ध रह कर प्रिन्सिपल साहब की ओर देखते रह गए। उन्हे चुप खड़े देख कर प्रिन्सिपल साहब ने अपने माथे पर पड़ी त्योरियों को गहरा कर प्रश्न किया—"क्या आपने हमारी बात नहीं सुनी ?"

"जनाब, मैंने सुन लिया है"--जिम्मेवारी के बोझ से शर्मा की जिह्वा थुथला गई—"प—परन्तु······ "

"सुन लिया है तो परन्तु क्या ?"—"प्रिन्सिपल साहब मानों शर्मा की मूढ़ता पर झुँझला उठे।

"परन्तु वर्दियाँ डिसइन्फेक्ट होनी चाहिये"—शर्मा ने साहस किया।

"हूँ"—प्रिन्सिपल साहब ने शर्मा की ओर घूर कर देखा। "डिसइन्फेक्ट होनी चाहियें ?······ हम क्या कह रहे हैं ? आज तीन बजे से पहले वर्दियां डिसइन्फ़ेक्ट हो सकती हैं ? वर्दियों के डिसइन्फेक्ट होने का खर्च किस मद मे जायगा ? यह आप बता सकते हैं ? ·· ····इस के लिये पहले कोई मंजूरी है ? इन्सपेक्टर के दफ्तर से यह मंजूरी आज आ सकती है ? मंजूरी आने तक वर्दियाँ कहाँ रखी जायेगी ? ·······ज़ाब्ते मे छुट्टी के दिनों मे वर्दियाँ कहाँ रखी जानी चाहिए ? ··· ·· क्या उन्हें गोदाम के बाहर छोड़ा जा सकता है ?"—प्रिंसिपल साहब शर्मा की ओर घूरते रहे।

"परन्तु·······"—शर्मा ने फिर साहस किया।

"आप बहुत परन्तु, वरन्तु करते हैं। हम हुक्म दे चुके हैं।"—प्रिंसिपल साहब शर्मा को खड़े छोड़ भीतर चले गए।

शर्मा लौट कर आए तो उन की समस्या हल हो चुकी थी। प्रिंसिपल साहब का हुक्म साफ था। परन्तु वर्दियों को रमजान धोबी के घर से मंगा कर जैसी की तैसी गोदाम में बन्द कर देने उन्हें और फिर विद्यार्थियों में बाट देने के परिणाम की कल्पना कर उन का सिर चकरा रहा था। उन्होंने अपने मन को समझाया कि मैं अपना कर्तव्य पूरा कर चुका। मेरा फर्ज था

प्रिंसिपल साहब के सामने स्थिति रख देना। मैंने वह कर दिया। वह सब दलीलें मन ही मन कर लेने पर भी शर्मा का मन न माना। पर वह कर ही क्या सकते थे ?

स्कूल के चपरासी रमजान धोबी के घर से वर्दियाँ ले आये। वर्दियाँ गिन कर गोदाम मे रख दी गई और चाबियाँ प्रिन्सिपल साहब के सुपुर्द कर दी गई। वर्दियों के इन्चार्ज की हैसियत से शर्मा को रजिस्टर में लिखना पड़ा—"पूरी वर्दियाँ सही हालत मे मेरे सामने गोदाम मे बन्द कर दी गई है' और इस विवरण पर दस्तखत भी करने पड़े। उन के दस्तखत के नीचे दूसरी स्याही से प्रिंसिपल साहब के भी दस्तखत हो गए।

छुट्टियों के ढाई महीने मे शर्मा जी को कई बार वर्दियाँ यों ही बन्द कर देने के परिणाम मे भयंकर रोग के फैलने की आशंका का ध्यान आया। तब वे मन को समझा कर रह गए कि छुट्टियाँ समाप्त होने पर कुछ न कुछ हो जायगा।

जुलाई के दूसरे सप्ताह मे कालिज खुलते ही सैनिक शिक्षा के इन्चार्ज की हैसियत से शर्मा जी को प्रिन्सिपल साहब का निर्देश मिला कि प्रान्त के सभी कालिजों के सैनिक-विद्यार्थियो का कैम्प होने जा रहा है। उन के कालिज के विद्यार्थियों को भी उस मे सम्मिलित होना होगा।

गोदाम की चाबी शर्मा जी को सौंपते हुए प्रिन्सिपल साहब ने हाकिमाना अंदाज में आदेश दिया—"शिक्षा-मंत्री कैम्प का निरीक्षण करेंगे। हमारे विद्यार्थियों की तैयारी और वर्दियो के बारे में किसी प्रकार की शिकायत का अवसर नही होना चाहिए।"

चाबियाँ हाथ मे लेते हुए शर्मा जी ने झिझक कर कहा—"परन्तु ...।"

"परन्तु क्या ?"—प्रिंसिपल साहब ने शर्मा जी की ओर आँखे उठा कर पूछा।

"वर्दियाँ डिसइन्फेक्ट नही की गयी है।"

"क्या मतलब है ? लड़के कैम्प में न जायें ?"

"हुजूर, लड़कों को वर्दियाँ देने की जिम्मेवारी मै नहीं लेना चाहता। वे डिसइन्फेक्ट नहीं की गई हैं"—शर्मा ने साहस किया।

प्रिन्सिपल साहब ने विस्मय से आँखे फैला कर शर्मा की ओर देखा। उन के होंठ गम्भीरता से दब गए।

उन्होंने मेज़ पर पड़ी घंटी को दबाया। चपरासी के आने पर उन्होंने हुक्म दिया—"क्लर्क बाबू को बोलो गोदाम का रजिस्टर लाएँ।"

प्रिंसिपल साहब ने शर्मा जी के सामने खुला रजिस्टर रख कलम की पूंछ से शर्मा जी के लिखे नोट की ओर संकेत कर दिया—"सब वर्दियाँ गिन कर ठीक हालत में मेरे सामने बन्द की गईं"—और फिर शर्मा जी के दस्तखतों की ओर संकेत कर प्रश्न किया—"यह किस के दस्तखत हैं ?"

प्रिंसिपल साहब का अभिप्राय समझ कर भी शर्मा ने साहस किया—"हुजूर,······परन्तु मैंने वास्तविक अवस्था आप के सामने रख दी थी।"

प्रिंसिपल साहब झुंझला उठे—"मै पूंछता हूं रजिस्टर में क्या लिखा है ?"—रजिस्टर धमाके से बन्द कर वे बोले—"जो लिखा है वही मैं जानता हूँ। मेरे पास कल्पनाओं के लिये समय नहीं है।" और हुक्म दिया—"विद्यार्थियों को आज शाम कैम्प के लिए रवाना हो जाना चाहिए। उन्हें वर्दियाँ तत्काल मिलनी चाहियें। अगर यह नहीं होता तो आप लिख कर मुझे अपनी सफ़ाई दीजिए कि रजिस्टर पर गलत नोट कैसे और क्यों लिखा गया ?"

"परन्तु······"

"फिर परन्तु···"—प्रिंसिपल साहब झुंझला उठे—"हम ज़बानी बात-चीत नहीं चाहते। आपका लिखा मौजूद है। अब जो कहना है वह भी लिख कर दीजिए। हमारा हुक्म आपने सुन लिया ?"

विद्यार्थियों को वर्दियाँ देते हुए शर्मा जी के हाथ कांप रहे थे और कलेजा डूब रहा था परन्तु लाचार थे। अपने मन को समझा देना चाहते थे कि उन्होंने स्थिति प्रिंसिपल साहब के सामने रख कर अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया है।

परन्तु सन्तोष न हुआ।

कालेज के विद्यार्थियों को कैम्प पर गए एक सप्ताह ही बीता था कि समाचार आया कि कैम्प में चेचक फूट निकली है और उन के कालेज के दो विद्यार्थियों की मृत्यु हो गई है।

कुछ दिन बाद शिक्षा विभाग के प्रान्तीय कार्यालय से इस बारे में जांच पड़ताल हुई। पूछा गया कि यह बीमारी कैम्प में फैलने के क्या कारण हो सकते हैं। कालेज इस बारे में क्या सफाई दे सकता है ?

प्रिंसिपल साहब ने फिर शर्मा जी को तलब किया और शिक्षा-विभाग के प्रान्तीय दफ्तर से आया पत्र उन के सामने रख कर प्रश्न किया—"इस बारे में आपका क्या जवाब है ?"

शर्मा प्रिंसिपल साहब की ओर देखते रह गए।

"क्या आप ने सुना नहीं ?"—कड़े स्वर में प्रिंसिपल साहब ने प्रश्न किया।

"मैंने तो इस विषय में सब स्थिति उसी समय आपके सामने रख दी थी"—शर्मा जी ने उत्तर दिया।

दोनों कोहनियाँ मेज़ पर जमा कर और हाथों के पंजों को मजबूती से आपस मे फँसा कर, शर्मा की आंखों मे देखते हुए प्रिंसिपल साहब ने प्रश्न किया—"स्थिति हमारे सामने रख दी थी ?……इन वर्दियों की सफ़ाई के के लिए जिम्मेवार कौन था ?…… वर्दियां गोदाम में बन्द करते समय आपने क्या नोट गोदाम के रजिस्टर में लिखा था ?"

शर्मा जी कुर्सी से उठ खड़े हुए। उन के चेहरे पर वैसी ही मुद्रा दिखाई दिखाई दी जैसी कि कुत्तो के भय से भागती बिल्ली के चेहरे पर आगे कोई रास्ता न दिखाई देने पर आ जाती है।

'वह नोट मुझ से लिखाया गया था। विद्यार्थियों को वर्दियाँ बाँटी जाने से पहले भी मैंने चेतावनी दे दी थी। अब इस बारे में मुझे जो सफाई देनी है, लिख कर पेश कर दूंगा"— शर्मा जी ने उत्तर दिया।

"हमें मालूम तो हो आप क्या लिख कर देंगे ?'—प्रिंसिपल साहब का स्वर नरम हो गया—"आप का उत्तर हमारी ही मार्फ़त जायगा। हमें उस नोट पर भी राय लिखनी होगी।"

"पूरी घटना आपको मालूम है। मैं और क्या लिख सकता हूँ"—शर्मा संकट का सामना करने की दृढ़ता से बोले।

"आप बैठिए" - प्रिंसिपल साहब न शर्मा को बैठने का संकेत किया—"अपनी जिम्मेवारी को समझिए और बात मे जाब्ते का ख्याल रखिए। सरकारी काम कहा-सुनी और अफ़वाहों के आधार पर नहीं, लिखे हुए हुक्मों और नियमों के अनुसार चलते हैं। अनुभवहीनता में अपना नुकसान न कर बैठिएगा।…… आपने अभी काम शुरू किया है। पूरा भविष्य आप के सामने है। आप परिश्रमी और चतुर नवयुवक है परन्तु सब से आवश्यक चीज है,

अनुभव ! जाब्ते की जानकारी !....समझ रहे हैं आप ?"—प्रश्नात्मक दृष्टि से प्रिंसिपल साहब ने शर्मा की आँखों में देखते रहे ।

शर्मा को स्वीकृति में सिर झुकाते देख प्रिंसिपल साहब बोले—"संस्था के प्रधान व्यक्ति काम को अपने हाथ से नहीं करते । उन का काम मातहतों के काम की निगरानी होता है । इस घटना के ब्योरे से मेरा क्या सम्बन्ध ? मेरा काम है, यह देखना कि आपने अपना कर्तव्य ठीक से निबाहा है और यह कि आप उत्तर देने मे किसी ग़लती से झंझट में न पड़ जाँय । उत्तर ऐसा होना चाहिए जो हमारे रिकार्ड से सही प्रमाणित हो ।....समझते हैं आप ? यानी उत्तर जाब्ते के अनुसार होना चाहिए । हमारा रिकार्ड और रजिस्टर कहता है कि आपने सब काम जाब्ते से किया है ।........बीमारियां आकस्मिक घटना के रूप मे भी होती हैं । हमारे रिकार्ड में उस का कोई कारण मौजूद नहीं है ।"

प्रिंसिपल साहब को शर्मा जी के चेहरे पर नैतिक उत्पीड़न के चिन्ह दिखाई दे रहे थे । समवेदना में अपने शरीर को कुर्सी पर ढीला छोड़कर वे और भी कोमल स्वर में बोले 'आपने एम० एस० सी० किस वर्ष पास किया था ?"

× × ×

"सन् १९४० में"

"आप तो फ़र्स्ट डिविज़नर हैं ?........शायद रिसर्च भी तो किया है आपने ?"

"जी हाँ"

तो फिर बोर्ड के कालिज में अपना भविष्य क्यों खराब कर रहे हैं ? यूनिवर्सिटी के ग्रेड के लिए आप कोशिश क्यों नहीं करते ? इस समय डिग्री कालिज के विज्ञान विभाग में जगह है । मैं प्रो० कामगार को लिख सकता हूँ । आप इस के लिये आवेदन पत्र क्यों नहीं देते ? मैं इस बात का प्रमाण पत्र दे सकता हूँ कि आप का शिक्षण और प्रबन्ध दोनों ही कामों का रिकार्ड बहुत अच्छा है । आप आवेदन पत्र लिखिए । आप के काम का रिकार्ड बेदाग है । लेकिन आप इस घटना का उत्तर जाब्ते के खिलाफ़ लिख कर अपना रिकार्ड और भविष्य खराब करना चाहें तो दूसरी बात है । समझ गए आप" ?

शर्मा के चेहरे से उत्तेजना का भाव दूर हो गया देख कर प्रिंसिपल साहब को विश्वास हो गया कि शर्मा उन की बात समझ गए हैं। उन का ख़याल ग़लत भी न था।

शर्मा का नैतिक मन इस घटना से भयंकर चोट खा गया था। वे बेईमानी के लिए विवश कर देने वाली इस पराधीनता से निकल यूनिवर्सिटी-ग्रेड की स्वतंत्र नौकरी के लिए छटपटा रहे थे परन्तु जाब्ते से ही व्यवहार करना भी आवश्यक था।

अगर हो जाता ?

इस पहाड़ी जिले में अनेक छोटे-छोटे नदी, नाले और खड्डें हैं। सरकार जानना चाहती थी कि स्थान-स्थान पर बांध लगा कर मछलियों का व्यवसाय बढ़ा सकने की क्या सम्भावना है ? इसी बात का निरीक्षण करने की विशेष ड्यूटी पर इंजीनियर राजनाथ इस पहाड़ी नगर में टिका हुआ।

नदियों को बश में कर लेना हँसी-खेल नहीं है। उन की पोषक और ध्वंसक, दोनों ही शक्तियाँ महान हैं। इसीलिये हमारे पूर्वज नदियों को मस्तक नवा कर उन की पूजा कर के, उन्हें प्रसन्न रखने की चेष्टा करते रहते थे। जाड़े की ऋतु में जब पहाड़ की चोटियों पर बरफ का पिघलना कम हो जाता है, बर्फानी नदियां और नाले सिकुड़ने लगते हैं, कुछ अन्तर्धान ही हो जाते हैं। गरमियों में यह नदी-नाले फिर प्रकट हो जाते हैं और सोतों से फूटने वाले लोप हो जाते हैं। बरसात में इन नदी-नालों की दुर्द्धर्ष शक्ति सहस्रों गुणा बढ़ जाती है। पुलों और बांधों की तो बात क्या, ये नदी-नाले अपनी शक्ति के मद में पहाड़ों तक की पीठ पर आघात कर उन्हे गिरा देना चाहते हैं। इसलिये इन नदियों के व्यवहार में हाथ डालये से पहले इन के मिज़ाज को सभी ऋतुओं में पहचान लेना आवश्यक होता है।

ओवरसियर लोग कुछ-कुछ दिन बाद जा कर, खास-खास स्थानों पर नाप-जोख कर के अपनी रिपोर्टें नाथ साहब के पास भेजते रहते थे। इन रिपोर्टों के आधार पर इंजीनियर साहब अपनी गणना तथा योजना का

आधार पर इजीनियर साहब अपनी गणना तथा योजना का आधार निश्चित कर रहे थे। विश्वस्त रूप से पूरी योजना पूरी बरसात की नाप-जोख के बाद ही बन सकती थी। नाथ साहब वर्षा ऋतु को उस के निश्चित काल से पहले समाप्त नही कर दे सकते थे। उन्हें परेशानी भी क्या थी ? तनखाह जैसी इलाहाबाद, लखनऊ मे मिलती, वैसी ही यहाँ मिल रही थी, भत्ता अलग और गरमियों मे पहाड़ पर रहने का अवसर।

परन्तु गरमियो में पहाड़ पर रहने के अवसर से मतलब ? एक पहाड़ शिमला, मसूरी और नैनीताल है, जहां तफरीह का जश्न जमता है। लोग जी भर कर मौज करके अपने-अपने कामों पर लौट जाते हैं। नाथ भी पहाड़ पर थे, परन्तु वैसे पहाड़ पर नही। इस पहाड़ को लोग प्रायः अवकाश प्राप्त (रिटायर्ड) लोगों का पहाड़ कहते है। गलत भी नहीं कहते। रेलवे स्टेशन से पूरे दिन का रास्ता बस मे तय कर के केवल रविवार को तफरीह के लिए कोई यहा कैसे आय ? तफरीह के लिए यहां है भी क्या ? पहाड़ की रीढ़ पर बसी बस्ती से दृष्टि तरल हवा पर तैरती हुई दूसरी और पहाड़ियो की रीढ़ो पर चिर-विश्राम करती वन-राशियों को देख सकती है। आकाश मे समीप ही और प्रायः सड़क से नीचे घाटी मे भी, बादलों के मचलने मे धूप-छाया का खेल देखा जा सकता। संध्या समय वृत्ताकार, एक के पीछे एक, झांकती हुई पहाड़ियों को प्राचीरों के ऊपर अनेक रंग की पिघली हुई आग की होली या स्थिर आतिशबाजी का खेल देखा जा सकता है। वर्षा लग जाने पर अनवरत झड़ियां। कभी चारों ओर से घिरी घाटियों मे धुनी हुई रुई के-से बादलों का उमड़ आना, जो आगे पर्दों मे सब कुछ छिपा कर, अनन्त का-सा दृश्य बना देते है। और कभी-कभी त्रिशूल और 'चौखम्भा' की चोटियो का बादलो के घूंघट से दर्शक की उत्सुक प्रतीक्षा पर निर्दय कटाक्ष कर मुस्करा देना। बस, यह चोटियां ही तो इस पहाड़ी नगर मे मुस्कराती है; आदमी नही मुस्कराते।

बादलो, पहाड़ों और बन राशियों को आदमी कहाँ तक देखता रहेगा ? आदमी तो आदमी को देखना चाहता है। यहां एक बाजार है, बहुत लम्बा-सा, चकले पत्थरों से मढ़ा बाजार; जहां दूर पहाड़ी-देहात से आये पहाड़ी अपनी जरूरत का सौदा जल्दी-जल्दी खरीद कर रात पड़ने से पहले अपने घर पहुँच जाना चाहते हैं। कभी कभी पल्टन से छुट्टी पर आये सिपाही देहात से अपनी

बहू को साथ ला कर, उस की पसन्द से घाघरे का कपड़ा नमक, तम्बाकू और गुड़ खरीदने या ताँबे की गागर का शौक पूरा करने के लिये इस बाजार में घूमते दिखाई देते हैं। परन्तु वे भी चतुर दूकानदार द्वारा ठगे जाने के भय से आशंकित और जल्दी ही गाँव लौट जाने के लिये चौकस। इस बाज़ार के दोनों ओर फैली हुई ढलवानें कई मुहल्लों और बँगलों का बोझ कंधों और कमर पर उठाये है। नीचे है साफ़-सुथरी माल रोड, अंग्रेज़ी प्रभाव से बसा नगर का आधुनिक भाग। सड़क के किनारे कुछ दफ्तर हैं और आधुनिक आवश्यकताओं को पूरा करने वाली कुछ दूकानें।

इंजीनियर राजनाथ का आना-जाना प्राय: इसी सड़क पर होता है। लोग प्राय: ही बिना क्रीज़ की पतलून पहने, देशी टोपी कानों तक दबाये और छतरी को छड़ी की तरह टेकते जल्दी-जल्दी चलते दिखाई देते हैं। स्कूल से आते-जाते लड़के-लड़कियाँ भी दिखाई देते हैं। या दिखाई देती हैं सिरों पर घास और ईंधन के बड़े-बड़े बोझ उठाये निम्नतम श्रेणी की स्त्रियां. जिन के चेहरे सिर पर लदे चारों ओर झुके बोझ के भीतर छिपे रहते हैं और जिन्हें अपने शरीर की अपेक्षा बोझ का ही ध्यान अधिक रहता है। उन की ओर नाथ क्या देखे? जिस धन को स्वामी नहीं सँभालता, उस की ओर चोरों की दृष्टि भी नहीं जाती। भले घरों की स्त्रियां यहाँ प्राय: बाहर नहीं निकलतीं। निकलती हैं तो सन् १९५० में भी आस्तीन से कलाई तक बाहें ढँके, कमर पर साड़ी का अनावश्यक घेर बना कर शरीर की आकृति को छिपाये, निगाह को सड़क पर गड़ाये चली जाती हैं; जैसे खोई हुई चाँदी की छोटी दुवन्नी ढूंढ रही हों।

जलवायु स्वास्थ्य के लिये अच्छा समझा जाता है। परन्तु स्वास्थ्य का भी प्रयोजन होता है। स्वास्थ्य का प्रयोजन केवल नदियों और खड्डों में जल की गहराई, चौड़ाई और वेग नाप कर उस में बहने वाले जल की प्रवाह-शक्ति का हिसाब लगा लेना ही नहीं है। यह सब तो किया जाता है जीवित रहने के लिये। जीवित रह कर कुछ और भी किया जाता है, कुछ और भी कर पाने की इच्छा होती है। नाथ का सम्बन्ध भौतिक जगत से है। अज्ञेय जगत की मीमाँसा और पार्थिव से निवृत्ति-द्वारा शान्ति की प्राप्ति में उस की आस्था नहीं है। वह जवानी के उद्दाम उच्छ्वास से कुलांचे भरने के लिये उतावला न सही, परन्तु वह जीवन से हाथ भी नहीं धो बैठा है। देश में अपने मकान

से आये उसे चार मास से अधिक हो गये हैं। कभी-कभी वह स्त्री का चेहरा देखने और उस का स्वर और उस की हंसी सुन पाने की इच्छा-सी अनुभव करने लगता है।······ पहाड़ी प्रदेश के विपुल प्राकृतिक सौन्दर्य में वह तो है नही। प्राकृतिक सौन्दर्य उसे अनावश्यक वर्षा और नदी में व्यर्थ वह जाते जल की भाँति निष्प्रयोजन जान पड़ने लगता है।

ऐसी अवस्था में नाथ अपने दिमाग़ पर छा गयी काई को दूर करने के लिये इस नगर के एक मात्र सिनेमा-घर में जा बैठता है। सिनेमा का आकर्षण उस ने पहले कभी इतना अनुभव नहीं किया। फिल्मों के अस्वाभाविक चित्रण से उसे विरक्ति ही थी, जैसे गवाही में असह्य झूठ सुन कर कोई जज खीज उठे। अब फिल्मों में उसे वही दिखाई देने लगा जिस का कि नित्य जीवन में अभाव था। अब नाथ को फिल्मों से उबकान नहीं होती। वह उन्हें ऐसे निगल जाता जैसे बिना नमक का खाना खा कर चुटकी भर चूरण फाँक लिया जाय। वह नयी-नयी फिल्मों की प्रतीक्षा करने लगा और प्रत्येक फिल्म को पहले ही शो' मे देखने लगा।

× × ×

नगर के अनुरूप ही सिनेमा-घर भी है, उदास और ऊँघता सा। उस पर किसी समय किया गया हरा या नीला रोगन अब समय और सीली हवा के प्रभाव से खाकी आसमानी सा हो गया है। तेल के इंजन से डायनेमो और डायनेमो से बिजली की मोटर चला कर फिल्में दिखाई जाती है। कभी-कभी मशीन गड़बड़ा जाती है तो आठ-आठ, दस-दस मिनिट तक फिल्म रुक जाती है और कुछ मिनिट के लिये रोशनी होती रहती है। टीन की ढालू छत के नीचे चटाई का समतल अस्तर दे देने से, शोभा में चाहे वृद्धि न हुई हो, आवाज़ गूंज नहीं पाती। सब से ऊँचे यानी दो रुपये दस आने के दर्जे मे कुछ गद्दीदार बेंचे कोच के रूप में, कुछ दफ्तरी कुर्सियाँ और कुछ आराम-कुर्सियाँ पड़ी रहती हैं। इस दर्जे के आगे, अगल-बगल गैलरी पर बिना बांह की कुर्सियां ऊँचे दर्जे की ओर पीठ कर के, आगे-पीछे रख कर, मध्य श्रेणी का टिकट खरीदने वाली स्त्रियों के लिये स्थान बना दिया गया है। इस सिनेमा में स्त्रियों और पुरुषों के पृथक-पृथक बैठने का विधान अब भी चल रहा है। इन की पीठ के पीछे बैठने वाले ऊँची श्रेणी के दर्शकों की निगाह से महिलाओं के बचाव के लिये पर्दे टांगने की लोहे की छड़ें भी लगी हैं,

छड़ों में पीतल के छल्ले भी झूल रहे हैं। पर्दे एक बार फट जाने के बाद फिर लगाये नहीं गये। शायद इस बीच में पर्दे का रिवाज कुछ कम हो गया।

इंजीनियर नाथ इस सिनेमा-घर में आता है तो सब से आगे, बीच की आराम कुर्सी पर बैठ कर पाँव फैला लेता है और सिगरेट सुलगाये, फिल्म की कहानी की उपेक्षा कर, केवल चेहरे देखता हुआ गाना सुनता है। सिनेमा को वह मजरे और सरकस के मेल के रूप में देखता है। जितनी देर फिल्म रुक कर रोशनी रहती है, अगल-बगल गैलरियों पर नज़र जाती ही है परन्तु कभी कोई उत्साह उस की आँखों को वहाँ से नहीं मिला।

उस रोज जब वह 'तूफान' फिल्म देखने गया तो गैलरी में सब से इधर की कुर्सी पर उसे एक युवा लड़की या युवती दिखाई दी। कोहनी से खूब ऊँची आस्तीन का बहुत चुस्त ब्लाउज पहने। ब्लाउज़ ऐसा चुस्त कि केवल शरीर के रंग को छिपा कर आकृति को और भी उभारे हुए। आकृति के उभार और दबाव को और चोखा कर देने के लिए ब्लाउज़ में चोली के भाग का रंग शोख सुर्ख और शेष कपड़ा शरीर के ही रंग का। साड़ी भी शरीर को छिपा देने के लिये लहंगे की तरह नहीं, बल्कि जैसे बोतल पर महीन कागज कस कर लपेट दिया गया हो।

मशीन सिंगल चल रही थी। बार-बार रोशनी होती और नाथ की निगाह उस ओर जाती। दिखाई केवल बांह, पीठ पर साड़ी और ब्लाउज़ के अन्तर से रीढ़ की गहराई और चेहरे का बाईं ओर का भाग ही, पड़ रहा था; परन्तु इतने से क्या शेष का अनुमान नहीं हो सकता? नाथ का ध्यान फिल्म की ओर रहा ही नहीं।

रोशनी होने पर वह युवती भी मुड़ कर अपने साथ बैठी बहुत कुछ अपने ही जैसी वेश-भूषा की सहेली से बात करती। नाथ को उस की आंखें और दांत भी दिखाई दिये, कितने सजीव! औचित्य का खयाल कर जितना देखा जा सकता था, नाथ देखता रहा और अनुमान करता रहा, आयु?··· विवाहित है?··· हो भी तो····?

फिल्म समाप्त हो गयी। नाथ बाहर आया। उस ने देखा वे दोनों सड़क पर आईं और एक मिनट बात करने के बाद माल रोड पर दक्खिन की ओर चल दीं। नाथ को सहसा ख्याल आया—फिर कैसे देख सकेगा? जैसे भीड़ में खो गया कुत्ता मालिक को पा जाने पर नज़र से ओझल नहीं

होने देना चाहता। चाव की पगलाहट में नाथ वह कर बैठा जो उसे नहीं करना चाहिए था और जिस बात की उस से आशा नहीं की जा सकती थी। वह उन के पीछे-पीछे चल दिया।

हल्की-हल्की फुहार पड़ रही थी, ऐसी कि छतरी होन पर भी बाँह से लटकी ही रह सकती है। रात के दस बजे के लगभग सड़क सुनसान हो चुकी थी। विरला ही कोई कहीं अटका रह गया व्यक्ति आ-जा रहा था। दूर दूर लगे खम्भों से भी सड़क पर बिजली की रोशनी यथेष्ठ थी। बिजली की बत्ती के नीचे से गुजरते समय उस सुडौल शरीर की, चलते समय माँस-पेशियों की गति वस्त्रों में झलक जाती थी। नाथ गीली सर्दी में उस शरीर की ऊष्मा के स्पर्श के लिये, उस शरीर को अपना बाँहों में पाने के लिये एक उष्ण बेचैनी मे पीछे-पीछे चला जा रहा था।

सड़क पर हल्की चढ़ाई आरम्भ होने पर नाथ का श्वास वेग से चलने लगा। उसे आशंका होने लगी, इस शब्द से वे पीछे घूम कर न देख लें। कुछ दूर चढ़ाई पर चढ़ते-चढ़ते वे सहसा सड़क के किनारे से उठती सीढ़ियो पर चढ़, एक बड़ी दीवार मे बने फाटक के भीतर जा छिपी।

सड़क पार सामने ही खम्भे पर लगी बिजली की रोशनी में नाथ ने फाटक के समीप बोर्ड पर पढ़ा - 'नागरिक लड़कियों का स्कूल'। चढ़ाई चढ़ने की थकावट के बाद, सड़क सूनी होने के कारण नाथ को उन सीढियों पर बैठ जाने मे कुछ संकोच नही हुआ। जिन सीढ़ियों पर सैंडिल रख कर 'वह' अभी चढ गयी हैं, उन पर बैठ जाना नाथ को अच्छा ही लगा, जैसे उसी के कदमों में बैठ गया हो। यह अपने मन को ठगना-भर था, वह तो पहुँच के बाहर जा चुकी थी।

नाथ ने बेवसी की सांस लेकर सोचा, वह कर ही क्या सकता था ? बात करता तो क्या, और किस बहाने ? सहसा उसे अपने कुछ जिन्दादिल मित्रों का साहस याद आ गया। वे आगे बढ़ कर कह सकते थे—"फुहार पड़ रही है। यह छतरी आप ले लीजिए" और फिर छतरी लेने जाने से परिचय का अच्छा-खासा आरम्भ। या कोई कल्पित नाम लेकर, मिस क्लीमेट ही सही, पूछा जा सकता था "आप मिस क्लीमेंट को जानती है !........ओह, शायद वे आज-कल यहां नहीं है। पहले यहां स्कूल में पढ़ाती थीं।" या रहने लायक स्थान बताने के लिए सहायता की प्रार्थना की जा सकती थी; बात आरम्भ होने पर ही बात निकलती है।

नाथ अवसर चूकने की अपनी कायरता के लिए पछता रहा था, और सूनी सड़क के किनारे सीढ़ियों पर बैठा अपनी कल्पना मे उस सुडौल-छरहरे शरीर को बिना श्रम की चाल से भीगी सड़क पर बढ़ते जाते देख रहा था। शरीर की आकृति से चिपके शरीर के रंग के ब्लाउज़ पर दूसरे रंग की चोली, जो शरीर के आकर्षण को छिपाने के लिए नहीं बल्कि उस ओर पुकारने के लिये लगाई गई थी और बांह की लपेट में आ सकने योग्य कमर के नीचे पुष्ट जांघों का सरल गति से अलग-अलग कदम उठाते जाना·······। नाथ को पश्चात्ताप हो रहा था, वह क्यों चूक गया।

साहस और दृढ़ निश्चय से उस ने सोचा—अभी न सही; जगह तो देख ही ली है। स्कूल की अध्यापिका है।—उस ने अँगरेजी में सोचा—अध्यापिका हो बनने के लिए कोई स्त्री पैदा नही होती। मै चाहूँगा तो यह होगा। जो भी आवश्यक होगा मैं करूँगा। उसे इक्कीस वर्ष से शनैः-शनैः संचित अपनी बैंक की जमा का ख्याल आया। सड़क पर दिखाई देते, ब्लाउज़ और साड़ी मे लिपटे दुर्दमनीय आकर्षण को बाहो मे ले पाने के अवसर के लिए वह सब बाज़ी पर लगा देने के लिये तैयार हो गया।

सीढ़ियो पर बैठे-बैठे नाथ की कल्पना में फुहार से भीगी सड़क भी मिट गई और केवल वह छरहरा और सुडौल शरीर ही दिखाई देने लगा। कुछ देर के बाद, क्यो कि जीवन के सामान ही कल्पना का भी गुण गति है, वह उस शरीर को अपनी बाहो में अनुभव करने लगा; एक छोटे निराले मकान मे लम्बे सहवास में और उस छरहरे सुडौल, मस्तानी चाल से चलते शरीर के साथ ही, जांघ के साथ लटकती उस सुन्दर बांह के नीचे बढ़ी हुई उंगली को थामे, कत्थई-सुनहरे-घुघराले केशों से भरे शिर का एक शिशु भी अपनी फूली-फूली टांगो से लट-पट चलता उसे दिखाई देने लगा।

नाथ कल्पना मे संतोप की पूर्णता अनुभव कर रहा था—यही सौन्दर्य की पूर्णता और सफलता है कि वह सौन्दर्य की सृष्टि भी कर सके।····उस पेड़ का सौन्दर्य क्या, जो फल नही देता? नाथ की कल्पना और आग बढ़ी—इस सौन्दर्य की रक्षा के लिये छत्र छाया के रूप में रक्षक एक सबल बांह, उस की अपनी बांह!

मन में गर्मी लिये उस सीली सर्दी में ठंडी सीढ़ियों पर बैठे रहना असुविधाजनक होने लगा। उस की कल्पना ठिठक गयी।······ नहीं, उस की

बांह; नहीं हो सकती।·····"यह वह नहीं कर सकेगा।········जिम्मेदारी को एक जगह तोड़ कर दूसरी जगह कैसे निभाया जा सकता है········? उस की सामाजिक स्थिति ?········उस की आयु के विचार से भी···· ····?

तो·······?

उस का विवेक जाग उठा। वह अपने से ही तर्क करने लगा, फूलों से लदी डाल को केवल पांव तले कुचल डालने के लिये तोड़ लिया जाय······ ···! उस में लगने वाले फलों की सम्भावना समाप्त कर, डाल को केवल एक दिन फूलदान में रखने के लिये तोड़ लिया जाय········? उस का मन कड़वा हो गया; अच्छा ही हुआ, वह बोल न सका। वह अपनी प्रतारणा करने के लिए फुहार से भीगी सडक पर अपनी परछाईं को अपने ही पांव से कुचलता अपने निवास-स्थान की ओर लौट गया।

परन्तु इतने से अपने भटकाव के प्रति नाथ के मन की ग्लानि समाप्त नहीं हो गई। वह टाल्सटाय और गांधी के विचारों से सहमत है। मन में आए पाप से मुक्ति का एक उपाय उस ने पढ़ा है—मन में आये कुविचारों को साहस से कह डालना········।

एक बरसाती साँझ जब मकान से निकलना कठिन था, उस ने पूरी बात लिख डाली और सच्ची कहानियां प्रकाशित करने वाली एक पत्रिका में भेज दी।

उस की कहानी पत्रिका में छप भी गई।

× × ×

इस छोटे-से नगर में लड़कियों के स्कूल की अध्यापिकाओं का जीवन शेष नागरिकों के जीवन की भांति ही या उस से भी कुछ अधिक नीरस और घटना-शून्य रहता है। रविवार का दिन सिर और कपड़े धोने मे या नगर में किसी परिचित परिवार में सहेली से मिल आने में चला जाता है। इसाई अध्यापिकायें अलबत्ता सुबह गिरजाघर जा कर इसाई समाज मे मिल-जुल सकती हैं और इस महंगी के जमाने में बिना अंडों के केक बनाने के नुसखे और पुरानी साड़ियों को नयी-सी दिखा सकने के तरीकों पर विचार कर सकती है। शेष पढ़ाई के दिनों में दिन भर लड़कियों को पढ़ाने के बाद सांझ को स्वेटर-मोज़े बुनते हुए, अपने भविष्य पर विचार कर, आशा-निराशा की उधेड़-बुन करने के अलावा कहानियों की पत्रिका पढ़ कर दिल हल्का कर सकती हैं। दूसरा उपाय ही क्या है ?

मिस सविता पिछले दिन कुछ बुनने के लिए ऊन लेने बाज़ार गई थी तो उस मास की 'सच्ची कहानियाँ' भी लेती आई थी। दिन भर लड़कियों को उत्तर-भारत की पर्वत-श्रेणियों के नाम रटाने और अन्त में जहाँगीर के शासन-काल में नूरजहाँ के प्रभाव का वर्णन करने के बाद, थकावट से लेट 'सच्ची कहानियाँ' के पन्ने पलटने लगी।

एक कहानी का शीर्षक 'अगर हो जाता' देख कौतूहल से उसे ही पढ़ने लगी। कहानी में अपने ही नगर का हूबहू वर्णन देख कर कौतूहल बढ़ा। जब जुलाई मास के अन्तिम सप्ताह में तूफान' फिल्म की भी बात आई तो जैसे उसी में गड़ ही गई। याद आया कि वह भी उसे देखने गई थी।

दुरंगे ब्लाउज की चर्चा देखी, तो मुह से निकल गया—"हाय मर गई!" सिर चकरा-सा गया। पत्रिका हाथ से खिसक-ही गई। परन्तु उंगलियों ने उसे लोहे की-सी मजबूती से जकड़ लिया और सांस रोक कर पढ़ गई। पसीना आ गया। मानो किसी ने दुस्साहस कर उस के नाम प्रेम-पत्र लिख दिया हो। लेकिन "हाय अखबार में ?"

लेटी न रह सकी, उठ बैठी। बैठने से भी चैन न आया तो टहलने लगी। लज्जा से सोचा, पत्रिका को जला दे।···—परन्तु पत्रिका तो केवल एक ही नहीं छपी होगी,······वैसा ब्लाउज स्कूल में सिवाय उस के और किस के पास है ?······क्या करे ?······अगर वह पुकार बैठता, तो ?

सविता कमरे के भीतर लौट आई। कहानी फिर ध्यान से पढ़ी। पढ़ने के बाद सिर पीछे कर, गर्दन सीधी कर ली और मन-ही-मन साहस से कहा—किसी का शरीर है तभी तो अच्छा लगा········

आईने के सामने खड़ी हो उस ने अपना चेहरा देखा और आईने से दूर खड़ी हो कर शरीर को। और फिर निस्संकोच अपनी बात का समर्थन किया,—ठीक ही तो है!

दोनों हाथ सिर के नीचे रख कर वह चित्त लेट गई। एसी बेचैनी अनुभव हो रही थी, जैसे कोई बड़ा भारी कल्पनातीत खजाना अपने घर में मिल गया हो और वह उस की बात होंठों पर न ला सकती हो।

और फिर सोचा - अगर पुकार लेता ?···अगर पुकार लेता तो····? उस के हृदय से इतनी गहरी सांस उठी कि खड़ी हो जाने के लिए विवश हो गई।

वह झुंझला उठी इस में अपमान क्या…………? एक दिन ऐसा क्यों न होगा ?'

अभी समय था। वह झपट कर अपनी सहेली लीला के कमरे में पहुँची और मचल कर आग्रह किया—"चलो, आज सिनेमा जरूर चलेंगे !"…

चलने से पहले उस ने कितने ध्यान और साहस से ड्रेस किया। वह दुरंगा ब्लाउज बार-बार हाथ में आ जाता था और हाथ से गिर पड़ता था। उतना साहस न हुआ।

वह फिर उसी कुर्सी पर बैठी, जहाँ डेढ़ मास पूर्व 'तूफ़ान' देखने के लिये बैठी थी। उस का माथा झनझना रहा था। घूम कर पीछे देखने का साहस न था परन्तु अपनी पीठ पर उसे निगाहें चुभती-सी जान पड़ रही थीं। बिना कुछ देखे और सुने, सिनेमा का आधा समय उस ने जैसे-तैसे बिता दिया।

उस ने निश्चय कर लिया कि आधे में रोशनी होने पर वह उधर गुसलखाने की ओर जायगी। जाते समय उधर देखने में कोई कुछ न कह सकेगा। वह एक बार ज़रूर देखेगी, ज़रूर, ज़रूर !

आखिर उस ने धड़कते हुए दिल को वश में करने के लिये दाँत दबा कर उधर देखा, कई आदमी थे। वह किसी के भी चेहरे को स्पष्ट देखने का साहस न कर सकी। उस ने सोचा—वह कौन हो सकता है ?····क्या वह आज नहीं देख सकेगा !····मैं नहीं देख सकती, वह तो देख सकता है !

सिनेमा समाप्त हो जाने पर निराशा और असफलता से डूबता हृदय लिये वह उठी। सड़क पर बिजली के प्रकाश में भी उसे कोई नहीं देख रहा था। लौटते समय अपने सैंडल की आहट के अतिरिक्त और कोई आहट पीछे से सुनने के प्रयत्न मे वह दो बार लड़खड़ा भी गई। उस समय खिन्न होने के बजाय उस ने; अवसर पा पीछे घूम कर देख लिया······ परन्तु कोई न था।

लौटने पर, जैसे उस की तबीयत खराब हो गयी। वह खाट पर लेट गई। उस के प्राण मूक पुकार में चीख रहे थे—क्यों नहीं हुआ····! एक बार तो वह अपने अस्तित्व को अनुभव कर तो लेती।

वह उठी और लैम्प स्टूल पर रख एक बार फिर उस कहानी को पढ़ने लगी···बाहों में दबा ली जाने की बात। उस का रोम-रोम सिहर उठा। उस की उँगली पकड़ कर सुन्दर शिशु के चलने की बात।·· उस की छाती

गर्व से उभर आई।········छत्र-छाया के रूप में सहारे के लिये कभी धोखा न देने वाली बाँह। और यदि बाँह सड़क पर ही छोड़ कर चल देती········उसे जान पड़ा, जैसे उस की खाट टूट कर वह नीचे खाई में, अनन्त खाई में गिरी जा रही है।

सुध आने पर जान पड़ा, सिर में चक्कर-सा आ गया था········कितना बड़ा धोखा हो जाता ! ओफ, अगर हो जाता········? तो····?

क्रोध में वह पत्रिका को मरोड़े जा रही थी कि उसे चूरा-चूरा कर के, उस का निशान तक मिटा देगी।

ओफ़, अगर हो जाता तो······? ओफ़, बच गई !

अंग्रेज़ का घुंघरू

कुछ बरस पहले सरकारी अफसर दौरे के लिये अवसर की प्रतीक्षा में रहते थे। तफरीह होती थी और अतिरिक्त कमाई का भी कुछ डौल हो जाता था। अब भत्ते मे कमी और महंगाई ने स्थिति बदल दी है। पहाड़ी इलाकों में तो और भी मुश्किल है।

यों अलमोड़ा जिला सुहावना है। घने, हरे जंगलों से छायी, एक के पीछे दूसरी झांकती अनेक पर्वत-श्रेणियाँ, घाटियों में विशाल सरकस की गैलरियों जैसी, हरी मखमल से मढ़ी खेतों की सीढ़ियाँ, बीच-बीच में बल खाते चाँदी से पटे रास्तों जैसी जल की धारायें जगह-जगह दिखाई देती रहती हैं। इन दृश्यों के लिये शौकीन लोग और यहाँ के स्वास्थ्यवर्धक जलवायु के लिए रोगी दूर-दूर से आते है परन्तु वहाँ तक ही जहाँ मोटर की सड़क उन्हें सुविधा से ले जा सके। बीहड़ उतार-चढ़ाव के रास्तों पर गाड़ियों से सफ़र संभव नहीं। पैदल चलने से शरीर का पूरा सत्व पसीना बन कर चोटी से एड़ी तक बह जाता है। टट्टू पर लद कर चलने से शरीर की दशा ऐसी हो जाती है जैसी टांके टूटी रजाई को झाड़ देने से उस में रुई की अवस्था हो सकती है। पैसे का दाम अब कुछ रह नहीं गया। सरकार द्वारा निश्चित मज़दूरी में कुलियों को बोझा ढोने का उत्साह नहीं होता। अपनी जेब का पैसा खर्च कर के दौरा करने का साहस केवल तनख्वाह में ही निर्वाह करने वाले अफसर को नहीं हो सकता। उस के लिये जेब भरने का दूसरा उपाय भी आवश्यक है।

पन्द्रह बरस तक हुकूमत करने की नौकरी करने के बाद भी मैं छोटी-मोटी जायदाद नहीं खरीद सका। अभी तक डिप्टी ही बना हूं, कलक्टर भी नहीं बन सका। यह विवेक के भय के कारण मेरी अयोग्यता का काफी प्रमाण समझा जाना चाहिये। इसलिये इस युग में, जब कि एस० डी० ओ० लोग परमिट बांटने का अधिकार देकर कल्पवृक्ष के माली बना दिये गये हैं, मुझे पंचायत राज अफसर जिसे राष्ट्रभाषा में 'महापंच' का महिमामय नाम दिया गया है, ही बन जाना पड़ा। आशा थी कि इस नये महकमे में, जो कि ब्रिटिश शासन की गुलामी की परम्परा से अछूता समझा जाना चाहिये, जनता में आत्मनिर्णय की भावना उत्पन्न करने और रचनात्मक कार्य की स्वतन्त्रता होगी परन्तु सफेद टोपी का प्रचंड प्रताप यहाँ भी कम उग्र नहीं।

'तल्ली-माहिल' पट्टी में जब से पंचायत बनी, बराबर झगड़ा चला आ रहा था। पंचायत जम ही नहीं पा रही थी। विवश हो कर वहाँ की गाँव सभाओं की स्थिति जानने के लिए पट्टी के दौरे पर जाना ही पड़ा और 'मोरनौला' के डाक बंगले में डेरा किया। पट्टी के सभी पंचों को केन्द्र के गाँव 'जाखोला' में तीसरे पहर आ जाने का संदेश भिजवा कर पट्टी के पंचायत-इन्सपेक्टर को साथ लेकर मैं स्वयं स्थिति जानने के लिए तीनों गाँवों में भी घूम आया।

साधारणतः दौरे में एहतियातन पिस्तौल जेब में रख लेना ही काफी समझता हूँ परन्तु 'मोरनौला' का जंगल बहुत घना है। शिकार काफी मिलता है। अप्रैल का महीना था। अप्रैल तक शिकार की छूट रहती है। इसलिये बन्दूक भी साथ ले ली थी। अर्दली साथ था। मामले की फाइल और बन्दूक उसी के पास थी।

'पासू' में गांव सभा के लोगों से मिलने के बाद 'बाँज' के घने जंगल में से होकर 'जाखोला' की तरफ आ रहे थे। पंचायत इन्सपेक्टर ने बाँज के एक पेड़ की शाख पर बैठे खूब मोटे जंगली मुर्ग को गिरा लिया। इस ख्याल से कि मुर्ग रात के खाने के समय काम आ जाय, अर्दली को मुर्ग और बन्दूक दे कर डाक बंगले लौटा दिया।

पंचायत इंस्पेक्टर के खिलाफ बहुत से पंचों को शिकायतें थीं। उस ने भी अपनी स्त्री या बच्चे को कुछ कष्ट होने की बात कही थी। इसलिये 'जाखोला' पहुँच पंचों से बात आरम्भ करने से पहले ही इन्सपेक्टर को भी अपने गाँव चले जाने की छुट्टी दे दी।

'जाखोला' में पंचों से बहुत देर तक बात की परन्तु प्रतिद्वन्दी दलों में किसी प्रकार समझौता नहीं हो पाया। ठाकुर बीरसिंह किसी तरह मानने के लिये तैयार नहीं था। उस में झगड़े और मुकदमेबाजी की जन्मजात प्रतिभा जान पड़ती थी। मुझे अपनी बात का समर्थन न करते देख उस ने बात सुनने से इन्कार कर दिया। वह अपनी सफ़ेद टोपी सहलाता हुआ पंचायत से उठ खड़ा हुआ और बोला—"इन्साफ की बात नहीं सुनी जाती तो जिसे जो करना है, कर ले। आखिर तो भगवान देखते हैं। अलमोड़ा में अदालत है। लखनऊ में मिनिस्टर हैं, इलाहाबाद में हाईकोर्ट है। हम देख लेंगे। हम 'वाकआउट' करते हैं जी!" धौंस देकर वह अपने समर्थकों के साथ पंचायत से उठ कर दस हाथ परे जा बैठा।

ऐसी स्थिति में गांव में अधिक ठहरना न उपयोगी था न आत्मसम्मान के अनुकूल। फाइल बेग में बन्द कर और छतरी ले कर उठ खड़ा हुआ। जमनसिंह के आदमी डाक बंगले तक पहुँचा आने के लिये तैयार हुए। लेकिन इन आदमियों को साथ ले कर चलने का मतलब था, प्रतिद्वन्दी दलों में से एक के साथ आत्मीयता प्रकट करना। इसलिए अकेले चलना ही उचित जंचा।

अभी सूर्यास्त में एक घण्टे का समय था जमनसिंह से रास्ता पूछ लिया। उस ने समझाया—"पगडंडी-पगडंडी चले जाइये। सामने का टीला पार कर नाले में उत्तर जाइयेगा। नाले में पानी कम ही है। पत्थरों पर पाँव रख कर लाँघ सकते हैं। सामने 'सौ' (चीड़ों से छायी ढलवान) है। फर्लांग भर ऊपर चढ़ जाइए। जंगलाती बटिया मिल जायगी। दक्खिन घूम जाइए। डाक बँगला मील से भी कम ही होगा।"

पगडंडी से नाले पर पहुँचा तो एक चौड़ी चट्टान देख चढ़ाई चढ़ने से पहले एकान्त में बैठ कर सिगरेट पी लेने की इच्छा हुई। दिन भर की थकान से कमर सीधी कर लेने के लिए चट्टान पर लेट ही गया। नाले के साथ-साथ घिघारू की ऊंची झाड़ियाँ थीं और कुंज (जंगली गुलाब) खूब फूला हुआ था। भीनी-भीनी महक आ रही थी। संध्या समय इन झाड़ियों में बसेरा लेने के लिए आए बुलबुलों के झुंड जोरों से टिरटिराते हुए इधर-उधर फुदक रहे थे, कहीं-कहीं चोंचे भी लड़ जाती; शायद स्थान के लिए झगड़ा हो रहा था। ख्याल आया—झगड़ा सिर्फ आदमियों में ही नहीं, पक्षियों

में भी होता है। नाले के पार छोटे-छोटे खेत एक के ऊपर एक गांव की ओर चढ़ते चले जा रहे थे। कुछ मर्द और औरतें इन खेतों में अब भी निराई कर रहे थे।

चट्टान पर चित्त लेट कर आकाश की ओर आंखे किये सिगरेट पीने में बहुत विश्राम जान पड़ रहा था। आकाश आधा-आधा बंट रहा था। आधा खूब नीला और आधे में उजले-उजले बादल। ख्याल आया, शायद रात में पानी बरस जाय। होगा, बेफिक्री से कहा—कौन अभी बरसा जाता है। विश्राम की शान्ति अनुभव करने के लिये आंखें कुछ क्षण के लिये झूठ-मूठ मूँदी थी परन्तु सचमुच झपकी आ गई।

मुह पर छींटे अनुभव कर सकपका कर उठा। अंधेरा हो गया था। नयी बियाबान जगह में घबराहट से मन धक्क से रह गया। घड़ी पर आंखें गड़ा कर समय देखा, आठ बज रहे थे, लगभग दो घंटे सोया होऊंगा। अंधेरे मे अनजाने रास्ते पर जाने मे भय मालूम हो रहा था। एक बार जाखोला लौट कर लालटेन और आदमी साथ ले लेने का भी खयाल आया। जंगली जानवरों का खासा भय था परन्तु अफसर के लिए यह बात कुछ सम्मानजनक न लगी क्योंकि पहले साथ के लिए इन्कार कर चुका था। वे तो मुझे पहुँचा हुआ समझ रहे होंगे। यह सोच कर दांत दबा कर जैसे-तैसे चलने की ठानी। चल ही पड़ा।

पानी का छींटा जैसे मुझे नींद से सावधान करने के लिए ही आया था। बादल धीमे-धीमे गरजता रहा परन्तु बरस नहीं रहा था। मैं मन ही मन सोच रहा था, यह मुझे जगाने के लिये ही था, डाक-बंगले पहुँच जाने की चेतावनी दे रहा है। भगवान कितने दयालु हैं। तुरंत उठ कर ढलवान पर चढ़ने लगा। प्रकाश कम होने से बटिया दिखाई नहीं पड़ रही थी ; परन्तु जमन सिंह ने बताया था कैसे भी ऊपर पहुँच जाने से सड़क मिल जायगी। नीचे घना, चिकना पिरूल (चीड़ की पत्ती) बिछा हुआ था। पाँव फिसल-फिसल जाते थे। यथासंभव जल्दी चलने का यत्न कर रहा था। जितना भय वर्षा का था उतन ही जानवर का भी था। जंगली जानवर के मुकाबले में पिस्तौल का ही सहारा था। जेब में हाथ डाल उसे बार-बार छूने से साहस होता था।

लगभग पन्द्रह मिनिट तक चढ़ता रहा परन्तु जंगलाती सड़क नहीं मिली।

मन में आशंका होने लगी अंधेरे में पगडंडी से उखड़ गया हूँ। यों चलता जाऊँगा तो कब तक चलता रहूंगा ? उसी समय सहसा बादल उलट मे पड़े, मूसलाधार बरसने लगा। हाथ की छतरी खोल ली और एक बड़े से पेड़ के तने के साथ लग कर खड़ा हो गया। सर्दी भी मालूम होने लगी। सोचा, जाखोला लौट चलूं। पहाड़ों से नीचे घने पेड़ों के बीच से कोई-कोई रोशनी टिम-टिमाती दिखाई पड़ रही थी। सोचा, वर्षा तो थमे, देखा जायगा।

लगभग दस मिनिट जोर से बरसा और फिर सहसा ही थम भी गया। जाखोला लौटना सम्मानजनक न जंचा। सोचा-सरकार और उस के अफसरों की सब से बड़ी शक्ति जनता पर उन का रोब है। लोगों के सामने जाकर अंधेरे और जानवरों के भय से गिड़-गिड़ाना उचित नहीं। प्रायः चोटी तक पहुंच ही गया हूं। जंगलाती बटया आखिर इसी तरफ से गुजरती है, तिरछा आ गया होऊंगा तो भी सौ पचास कदम के अन्तर से मिल ही जायगी। फिर तो मील भर ही है बस, रीछ या छोटा बाघ न मिले।

पेड़ के नीचे से निकल कर फिर चढ़ाई की तरफ कदम बढ़ाये। पिरूल भीग जाने से अब पांव नहीं फिसल रहे थे। जंगली जानवरों के सम्बन्ध में सुनी हुई बातें याद आ रही थीं—रीछ सामने पड़ जाय तो पिछले पाँव पर खड़ा होकर हमला करता है। कभी पीछे से खोपड़ी ही नोच लेता है, आदमी को नीचे ढलवान पर देख लेता है तो उस पर कूद पड़ता है। जंगल में घास काटने वाली स्त्रियों को बहुत परेशान करता है नर-मादा मे भेद समझता है, बहुत कामुक होता है। परन्तु यहाँ के लोग रीछ का सामना एक बड़े हंसिये से ही कर लेते हैं। गुलदार, छोटा बाघ अधिक भयंकर होता है। वह दुबक कर आदमी पर हमला करता है। सड़क किनारे के किसी पेड़ पर चढ कर मोटी शाख पर दुबका बैठा रहता है और आदमी के नीचे से निकलते समय सिर या कंधों पर कूद पड़ता है।

उपाय भी याद आ रहे थे—रीछ के सामने से बचना हो तो चढ़ाई की ओर नहीं ढलवान की ओर भागना चाहिए। रीछ ढलवान पर तेजी से नहीं भाग सकता। उन की आँखों के सामने बाल आ जाते हैं। रीछ कांटों से बहुत डरता है, काँटों में छिप जाना चाहिए। खुद भी सोचा—कोई भी जानवर झपटे, अगर छतरी की नोक उस के खुले मुंह में ठोक कर दबा दें ?…नोक एक बार गले तक पहुंच जाय और पूरी शक्ति से धंसा दी जाय तो जानवर

जरूर बेबस हो जायगा। बारिश रुक चुकी थी इसलिए छतरी को लपेट कर छड़ी की तरह सुथरा बना लिया। जरा भी खटका होने पर रोंये खड़े हो जाते थे। शिकारियों की बातें याद करता जा रहा था जो शेर, भालू को खोजते फिरते हैं। बस, साहस और औसान कायम रहना चाहिये। तभी आदमी जंगली जानवरों को बस में कर सकता है। पहाड़ी देहाती तो कुल्हाड़ी और हंसिये से शेर तक का सामना करते है. अपनी जेब मे तो पिस्तौल है।

कुछ और ऊपर चढ़ कर सड़क मिल गई। राह भूल जाने के भय से जान बची। आशा हुई, कटिया पर कोई आता जाता आदमी भी मिल सकता है। पहाड़ी लोग तो रात के पहर-दोपहर तक राह चलते रहते हैं। ऊपर आकर बाँज का जगल मिला। इस कारण सड़क पर अंधेरा और भी घना था। जानवर भी, सुना है, बाँज के जंगल मे ही अधिक मिलते हैं।

पहाड़ी लोग जंगली जानवर का उतना भय नही करते जितना भूत-मसाण का। मन में सोचा, जंगली जानवर न मिले, भूत-मसाण की भली रही। परन्तु उस समय भूत और मसाण की कल्पना का भी तिरस्कार करना भला न लगा। मन ही मन सोचा, सृष्टि का क्या अन्त है? पैशाचिक शक्ति भी तो होती है। शरीर नष्ट हो जाता है तो आत्मा क्या होता है? अतृप्त आत्मा दूसरों को क्लेषित करती हो तो आश्चर्य क्या?

आंखों को खूब सतर्क खोले तंग जंगलाती सड़क के दोनों ओर देखता जा रहा था। साहस बढ़ाने के लिये पिस्तौल को जेब से निकाल हाथ में ले लिया। भरोसा था, मौका पड़ने पर यदि पिस्तौल की गोली जानवर के माथे या सीने पर लग जाय तो रायफल के बराबर ही समझिए। चूकने को तो रायफल का निशाना भी चूक सकता है। परन्तु हथियार का भरोसा क्या? हथियार के उपयोग का अवसर मिले तब तो। ऐसे समय भगवान का ही सहारा होता है। मन ही मन कहता जा रहा था हे प्रभो! संकट मे तुम्हीं सब के रक्षक हो। बचपन में ऐसे समय हनुमान-चालीसा का बड़ा सहारा होता था। पढ़-लिख लेने के बाद से गायत्री मन्त्र की शक्ति पर विश्वास हो गया था। मन ही मन गायत्री का जप करता जा रहा था कि बुद्धि चैतन्य और मन स्थिर रहे। जितने कदम चल लेता, समझता, भगवान की दया से इतना निरापद गया। भय के इतने कदम कम हो गये।

सहसा धीमी गुर्राहट सुनाई दी। कदम शिथिल और रोंगटे खड़े हो

गये। कांपते हुए हाथ में पिस्तौल के दस्ते पर मुट्ठी मजबूत कर हाथ साध लिया। गुर्राहट दाहिनी ओर थी। सतर्कता से देखा, दाहिनी ओर एक पेड़ के उजले तने के समीप कोई बड़ा सा काला जानवर सिमिट कर बैठा था, जैसे बड़ा कुत्ता चौकस-चौकन्ना बैठा हो। गुर्राहट और साफ सुनाई दी। रोम-रोम से पसीना बह गया। पिस्तौल उस ओर को साध ली। जानवर गुर्राना रोक पीछे की ओर सिमटता जान पड़ा, जैसे बिल्ली शिकार पर कूदने के लिये शरीर को स्प्रिंग की तरह पीछे खींचती है। क्षण तो बहुत होता है, अणु मात्र मे ही सब कुछ होने को था, या तो जानवर मेरे ऊपर होता या मेरी गोली उस के शरीर में।·······गोली दाग दी।

जानवर एक चिल्लाहट से उछल पड़ा। उस की काली खाल फट कर फैल गई और आदमी की आकृति क्या, आदमी ही ·······कुछ बड़े परिणाम का एक आदमी उछल पड़ा और उस के सिर पर घंटियां बज उठीं। और यह सब प्रत्यक्ष था।

भूत-मसाण का भय लड़कपन की बात थी। तब रात के अंधेरे में अपने ही घर में, पीपल के नीचे, सभी जगह भूत की आशंका होती थी और हनुमान चालीसा का पाठ कर के भूत से बचने का उपाय भी किया करते थे। उन बातों को अब तीस बरस बीत चुके थे परन्तु इस चमत्कार के सामने तर्क भूल कर संस्कार ही प्रबल हो उठे। घुटने लड़खड़ा गए और मुख से सहसा शब्द निकल पड़े—"जय कपीश तिहुं लोक उजाग ···।"

काले जानवर की खाल मे से हनुमान जी की ही तरह कुलांच मार कर उछल पड़ने वाले उस जीव ने मनुष्य के स्पष्ट स्वर मे ललकारा—"तेरे मसाण की मां का·······।" उस गाली के साथ फिर जोर से घंटियां खनखनाने की आवाज आई।

मनुष्य का स्वर और जीवन की नित्य परिचित गाली सुन कर सांस में सांस आई। मतिष्क साफ हो गया। घिघियाए हुए गले से पुकारा—"डाक वाला है—।" और पिस्तौल को फौरन जेब में रख लिया।

उत्तर में फिर पैदल डाक ले जाने वाले हरकारे की लाठी के घुंघरू बज उठे और फिर ललकार सुनाई दी—"भाग साले! तेरे मसाण की मां का·······! खूब जानता हूं साले, साहब का रूप धर कर आया है।"

खांस कर मैंने पुकारा—"क्यों डाक वाले कम्बल लपेट कर सो गया

था ? बहुत ज़ोर का खुर्राटा लेता है !" उस का भय दूर करने के लिए जेब से माचिस की डिबिया निकाल कर सींक जला कर अपने चेहरे की ओर उठाई और प्रश्न किया —"डाक बंगला कितनी दूर है ?"

हरकारे ने अपना सन्देह निवारण करने के लिए एक बार और घुंघरू बजाया और आश्वासन पाकर बोला—"हां हजूर, जोर का पानी आ गया तो पेड़ के नीचे दम ले रहा था। हजूर, बंगला यही आध मील पर होगा ! ………डाक बंगला जा रहे हैं ?"

"हां"

शरीर इस पल भर के तनाव से चूर-चूर हो गया था। जेब से एक सिगरेट निकाल माचिस सुलगा कर जरा सुस्ता लेने के लिए कोई पत्थर देख रहा था। हरकारे ने अपना कम्बल बिछा दिया।

उस के कम्बल पर बैठ एक सिगरेट उस की ओर बढ़ा कर पूछा—"डर गए तुम ?………क्या सपना देख रहे थे ?"

"नहीं हुजूर"—विश्वास के स्वर में हरकारे ने उत्तर दिया। "भैन…… मसाण लगता है इस सड़क पर।………बड़ा छलिया है। बड़े रूप धरता है। कभी सीटी देता है, कभी जानवर की बोली बोलता है, कभी कान के पास बन्दूक छोड़ देता है, अभी देखा हजूर ने ?"

"यह अभी जो खटका हुआ, किसी पेड़ की बड़ी डाल टूट गई होगी ?" —मैंने उसे समझाना चाहा।

"अरे नहीं हजूर, रात में डाल और कौन तोड़ेगा आकर ?"—हरकारे ने आग्रह किया, "यह सब वही करता है………।"

सिगरेट से कश लेकर मैंने पूछा—"जंगल मे तो जानवर भी मिलता होगा ?"

"हाँ हजूर, क्यों नहीं मिलता। जंगल ही ठहरा। जंगल तो जानवर का घर ठहरा। कभी रीछ, छोटा बाघ मिल ही जाता है। लेकिन हुजूर मसाण जादे बदमाशी करता है।"

पूछा—"जानवर या मसाण मिल जाता है तो क्या करते हो ?"

"कोई डर नहीं है हुजूर, यह अंग्रेज का घुंघरू है। जहाँ तक इस की आवाज जाती है, भूत, मसाण, बाघ कोई नहीं ठहर सकता। हुजूर अंग्रेज का बड़ा प्रताप रहा। अब भी यह उस का घुंघरू है। हुजूर पचीस बरस

हुए, जब यह पहले पहल इधर डाक निकाली तब खतरा था; अब क्या है। तब भी शाम के आठ बजे 'मगरा' से डाक लेकर, डबल-चौकी कर के सुबह चार बजे 'मालकोट' में डाक देते थे। तब हुजूर एक बार यहाँ बड़ा बाघ पड़ने लगा था। अलमोड़ा जाकर रपट लिखाई। तब डाक के साहब एक बड़े भारी असली अंग्रेज अफसर थे। हुज़ूर, बड़े मेहरबान साहब लोग थे, उन का क्या कहना ? साहब ने हुक्म दे दिया, रात के वक्त जंगल मे डर होता है। सब हरकारों के घुंघरू बढ़ा दो। हुजूर पहले भाले में चार घुंघरू मिलते थे, तब आठ हो गए। भैन''''''बाघ और मसाण की क्या मजाल कि सरकार के हरकारे से बोले। सरकारी डाक सर पर हो तो क्या डर ?"

सिगरेट समाप्त कर वह फिर बोला—"अब देखा हुजूर ने ? साले ने पेड़ की डाल तोड़ दी। बस चलता तो उठा कर पटक देता चेकिन हम लोग ऐसा बे खबर थोड़े रहते हैं। दम लेने को लेटा था तब भी घुंघरू हाथ मे था। जहाँ घुघरू बोला, साले का पता नही। हुजूर अभी परसों रात में डाक और भाला सड़क किनारे रख कर पेशाब करने बैठ गया था। मसाण भैन''''''भैन न थप्पड़ मार दिया। मैं पीछे को गिरा तो हाथ पड़ गया घुंघरू पर। मसाण साला एक दम गायब !"

सिगरेट समाप्त हो जाने पर उठ खड़ा हुआ और डाक बंगले की ओर चल पड़ा। मन ही मन भगवान को धन्यवाद दे रहा था कि भय से हाथ कांप जाने के कारण पिस्पौल का निशाना चूक गया। यदि कम्बल में लपेटे खर्राटे लेते हरकारे को गोली लग जाती तो क्या होता ?

सफलता के लिए और असफलता के लिए भी धन्यवाद भगवान को ही है। परन्तु हरकारे को तो अंग्रेज के घुघरू के सिवा किसी और पर भरोसा है नहीं। भगवान और अंग्रेज के घुघरू में कौन बड़ा है ?''''' विश्वास के इस झगड़े में तो विश्वास ही फैसला भी कर सकता है।"

अमर

बात का सिलसिला जोड़ने के लिये स्मृति को पच्चीस वर्ष पीछे ले जाना होगा। अब जान पड़ता है किसी दूसरे की बात हो, या किसी से सुनी हुई कहानी।···समय भी कितना बीत गया है। तब से तो एक-एक नयी पीढ़ी चलती-फिरती नज़र आने लगी है।

कालेज में पढ़ रहा था, जीवन में सफल हो सकने की तैयारी कर रहा था। कौन नहीं जानता कि समाज में आदर और आराम से जीवन बिता सकने के लिये अच्छी जगह पा लेना आसान नहीं है? जगह की कमी जान पड़ती है। दोनों कोहनियों से ठेलते हुये, जगह बना कर आगे बढ़े बिना कुछ नहीं हो सकता।

सौन्दर्य अपनी ओर खींचता था परन्तु जीवन निर्वाह की आशंका पीछे लगी थी कि जीवन में आर्थिक सफलता की ट्रेन पकड़ कर उस में पाँव जमा लेना पहले जरूरी है। चित्रकारी में लग जाने से अपना और परिवार का निर्वाह हो जाने लायक पैसा पा जाने की आशा कहाँ थी?····सौन्दर्य और कला शौक की चीज़ें ठहरी। पहले जिन्दगी, तब शौक। वकील बनना जरूरी था, अर्थात् दूसरे की असुविधा से लाभ उठाने की विद्या सीखना। चित्रकारी का अभ्यास न होने के कारण यत्न करने पर मेरे हाथ से सौन्दर्य के बजाय कुरूपता ही बन पड़ती थी। मन के लिये यह कितनी बड़ी ठेस थी।

अल्मोड़ा के एक सहपाठी मित्र से पहाड़ों के सौन्दर्य की बातें सुन-सुन

कर एक बार दसहरे की छुट्टियों में उसी का मेहमान बन कर अल्मोड़ा आया था। अब फिर यहाँ आकर वह स्मृति ऐसी ताजी हो गयी है जैसे कोई पुराना सुरक्षित रखा चित्र मिल गया हो।

अल्मोड़ा के अनेक स्थलों पर घूम-घूम कर वह चित्र देखे जिन्हें मनुष्य की अंगुलियाँ नहीं बना सकतीं, प्रकृति की विराट शक्तियाँ ही उन का आयोजन करती हैं। ऊपर नीलम सा नीला आकाश, सड़क के नीचे घाटियों में भरे बादलों का निस्सीम विस्तार। इन बादलों की पीठ पर तैरते काले-काले स्तूपों जैसे पहाड़ और उन के ऊपर चांदी के भग्न पिरामिडों की पंक्तियों जैसी धूप मे चमकती बरफ की चोटियाँ !···मित्र के साथ बातचीत करते हुए घूम फिर कर यह सब दृश्य देख लेने से संतोष नहीं होता था। इसलिये जब-तब चुपचाप अकेले मे इन्हें देखने निकल जाता।

अल्मोड़ा बाजार से 'पोखर खाली' और 'हीराडुगरी' की लम्बी चढ़ाई चढ़ कर, शहर से डेढ़ एक मील पर ही 'नारायण तिवाडी देवाल' की बस्ती है। पहाड़ियों पर ऊपर नीचे साहब लोगों के कुछ बंगले है। सड़क के किनारे बाएँ हाथ आठ-दस दुकानों का सिलसिला है। दाएँ हाथ भी शुरू में ही दो एक दुकानें है, शेष जगह पड़ाव पर ठहरने वाली खच्चरों को बांधने के लिये खाली है।

दूकाने मैली-बेरौनक हैं। गुड़ और तेल के सौदे पर मक्खियाँ और बर्रे मंडराते रहते हैं। चारों ओर चीड़ के जंगल होने के कारण ईंधन की कमी नही है। चीड़ के ईंधन के धुएँ का आवरण दुकानों की दीवारों और सब सामान पर चढ़ा रहता है। दुकान की सब चीजों से काली टीन की एक केतली भट्टी या चूल्हे की विरहाग्नि पर सुरसुराती हुई प्रेमा ग्राहक की प्रतीक्षा करती रहती है। ग्राहक के आने पर दुकानदार किसी भी समय पीतल के गिलासों में चाय बना देते हैं।

इन दूकानों के ऊपर ही दूसरी मंजिल में दूकानदारों के परिवार रहते है। दूसरी मंजिल की ऊँचाई इतनी है कि बाजार में सड़क पर खड़ा आदमी हाथ बढ़ा कर चीज ले दे सकता है। आते-जाते मुसाफिरों को खिड़कियों से पीतल के बरतन, अलगनियों पर लदे कपड़े और चारपाइयों के पांव दिखाई देते रहते हैं।

अल्मोड़ा बाजार में हर चालीस-पचास कदम पर चाय की दुकानें हैं।

लेकिन लंबी, कर्री चढ़ाई चढ़ कर 'नारायण तिवाड़ी' पहुंचने पर अगली चढ़ाई शुरू करने से पहले चाय पीने की रुचि होने लगती है। खास कर इसलिए कि चाय पीते समय सामने जंगलों का दृश्य रहता है। कई बार इधर आ चुका था।

छुट्टियों के अन्त में, अल्मोड़ा छोड़ने से पहले, एक दिन सुबह ही उस ओर गया। प्रयोजन था, उस से आगे 'कसार देवी' से दिखाई देने वाली हिमालय की बर्फानी चोटियों की दीवार का एक फोटो लेने का। 'कोडक' का बक्स-कैमरा हाथ मे था। 'नारायण तिवाड़ी देवाल' पहुंच कर चाय के गिलास से पहली थकावट मिटाने के लिए दाएं हाथ की पहली दुकान के भीतर जा बैठा।

दुकानदार ने अनगढ़ शाखाओं के पायों पर, चीड़ के मोटे तने की बगल से बची फांक जड़ कर गाहकों के बैठने के लिए बैंच बना दी है। दुकानदार धूनी पर तपस्या करती केतली के नीचे फूंक मार कर आग को सचेत करने लगा। सांस ले पाने के लिए कुछ प्रतीक्षा कर लेने मे मुझे भी आपत्ति नही थी।

बेंच पर बैठने से नजर चौड़े दरे के बाहर सड़क के उस पार दुकान की दूसरी मंजिल की खिड़की पर ही पड़ती थी। खिड़की का आधा निचला भाग तख्ते से पटा था। इस तख्ते के किनारे पर जांघ रखे, एक भरी जवानी लड़की या एक बच्चे की मां युवती खिड़की की चौखट में अटी बैठी थी। वह सड़क से उतरती ढलवानों के परे, कहीं दूर नजर गड़ाये थी या सुबह की ठंडक में कुछ क्षण के लिये ताजी धूप सेंक रही थी।

अल्मोड़ा मे नागरिक श्रेणी की स्त्रियाँ घर के बाहर प्रायः नहीं दिखायी देतीं। लड़की बे खबर सी, घर के काम काज में चीड़ के धुंए से मटियाली धोती में शरीर को लपेटे थी परन्तु उस के स्वस्थ गोरे चेहरे और चौखट को थामे हाथों और बाहों पर न चीड़ के धुएं की मलीनता और न घर के भीतर मुंदे रहने की कुम्हलाहट ही थी। मानो केसर मिला दूध चू जाना चाहता हो। उस के चेहरे और शरीर पर फूटती जवानी को संभालने में उस की मैली धोती के अंचल के तार-तार खिच रहे थे। तख्ते पर दबी उस की जाँघ जैसे धोती मे छिपाई हुई सुडौल लंबी लौकी हो और कमर डमरू जैसी।

धुआंखे हुए मकान की खिड़की में वह चेहरा ऐसे जान पड़ रहा था जैसे सूखी काई से छाये ताल में एक कमल फूट आया हो; या जैसे उसी रोज सुबह देखा था, धूसर मटियाले बादलों के उफान पर सूर्य की किरणों के स्पर्श से गुलाबीपन लिए कोई बरफ ढंकी फूट खड़ी हुई हो। अंतर था कमल या बरफ की उजली शिला में सौंदर्य परखना पड़ता है, उस युवा शरीर से फूटती लहरें देखने वाले के शरीर को मथ कर प्राणों को समेटे ले रही थी।

हाथ समीप रखे कैमरे की ओर बढ़ गया। कैमरे को गोद में ले कर सिर झुका कर 'व्यू फाइंडर' मे देख साध लिया। एक बार खिड़की की ओर निगाह उठाई; यदि आंखें मिल सकें? आंखे मिल गयीं...... जैसे नये तोड़े नारियल की सफेदी पर आ बैठे काले भौरे। हाथ ने ठीक समय पर कैमरे का ट्रिगर दबा दिया। शरीर में जैसे बिजली का तार छू गया हो....!

लड़की झमक कर ऐसे अदृश्य हो गयी जैसे खरगोश शिकारी कुत्ते को समीप देख झाड़ी मे कूद जाय। वह चली गयी तो क्या? उस के रूप का प्रतिबिम्ब तो मेरे कैमरे में सदा के लिए आ गया था। संतोष का एक उच्छ्वास ले कैमरे को एक ओर रख दिया। एक अनमोल रत्न समेट पाने का गर्व था।

चाय का गिलास अभी आधा ही समाप्त कर पाया था कि सामने की दुकान से एक अधेड़ व्यक्ति ने बहुत ऊंचे स्वर में सम्बोधन किया—"यह क्या बदमाशी हो रही है? देश के गुडों को हम सीधा कर देते हैं...."

इस की चिल्लाहट से दो-तीन और आदमी आस्तीनें चढ़ाते हुए पास पड़ोस की दुकानों के सामने आ जमा हुए। सबसे पहले ललकारने वाला आदमी चिल्लाने लगा—"ऐसे बदमाश हैं कि घर के भीतर बैठी औरतों की तस्वीरें खीचते हैं...."

उस समय सौन्दर्य की उपासना की बात कहने से पिटे बिना नहीं बच सकता था। प्राण बचाने के लिए झूठ का ही सहारा लेना पड़ा। कैमरा उन लोगों की ओर बढ़ा कर कहा—'यहाँ किस की फोटो लेता? फोटो नहीं ले रहा था। अभी सिर्फ इसे ठीक कर रहा था। आप लोगों को संदेह है तो किसी फोटोग्राफर को दिखा कर तसली कर सकते है।"—उन्हें बात सुनते देख यह भी कह दिया—"भैया कहो तो अभी खोल कर दिखा दूं?"

उन में से एक व्यक्ति जानकार को तरह आगे बढ़ कर बोला—"देखें !"

इस अज्ञान से हैरान हो कर समझाया—"यों क्या दिखाई देगा·······? फिल्म खराब हो जायगी !"

अधेड़ आदमी बिगड़ उठा—"है न बदमाश ? अभी कहता था, देख लो ! और अब दिखाता नही । हम तस्वीर कभी नहीं ले जाने देंगे ।"

लिए हुए चित्र और फिल्म का मोह न कर पिटने से बचने के लिए कैमरा खोल कर वह फिल्म उन लोगों के हाथ मे दी । फिल्म रोशनी में खोल दी जाने से लाले-धुधले शीशे की सपाट पटिया जैसी दिखाई देने लगी । उन्हें मेरी बात पर विश्वास हो गया ।

वह फिल्म वहीं सड़क पर खेलते एक बच्चे को थमा कर उतराई पर ठोकरें खाता अलमोड़ा की ओर लौट आया, जैसे सफलता के स्थान से धकेल दिया गया व्यक्ति लौटता है । अपने मेहमान मित्र से उस घटना की कोई चर्चा करना उपयुक्त नहीं समझा ।

हाथ में आया अनमोल रत्न छिन जाने की याद लिये इलाहाबाद लौटा । बहुत दिनों तक मन पर उस घटना की चोट रही; ····यह उस सुन्दरी का गर्व था या उस की सतीत्व की धारणा ?····या उस ने अपने आकर्षण के प्रभाव मे अपना अपमान समझा ?

बीच के इतने वर्षो की लम्बी बात से क्या फायदा ? भविष्य को सुखमय बनाने के लिये सब सुख और विश्राम त्याग कर कठिन परिश्रम से जीवन को इतना दुखमय बना लिया कि जीवित रह सकने मे भी संदेह होने लगा । डाक्टरों ने स्वास्थ्य सुधारने के लिए सब परिश्रम छोड़ कर विश्राम करने और जगलों और पहाड़ों की स्वच्छ जलवायु में जाकर जीवन की शक्ति को कुछ सहायता देने का परामर्श दिया ।

×　　　×　　　×

मैं फिर अलमोड़ा में आकर रहने के लिये ही विवश हो गया । ऐसी अवस्था में आकर अलमोड़ा के उस भाग में शरण ली है जो शहर से दूर, 'नारायण तिवाड़ी देवाल' के आगे चीड़ों और देवदारों की छाया में अलग-अलग, छोटे-छोटे मकानों के रूप मे बसा है, जहां रोगी लोग स्वस्थ हो जाने की आशा में लेटे रहते हैं ।

जीवन में सुख की खोज के लिये कठोर परिश्रम के परिणाम में दुःसाध्य

रोग का दुःख पाकर यह समझ लेना आसान था कि सुख की इच्छा और खोज केवल भ्रम है। संसार में जन्म पा लेने से ही दुःख का यथेष्ट भोग भाग्य मे आ जाता है। दुःख और दुःखों की मूल तृष्णा को बढ़ाने से अधिक मूर्खता और क्या होगी ? इस परिणाम पर पहुँच कर अलमोड़ा में आ बैठा हूँ परन्तु........

परन्तु देखता हू कि प्रकृति जैसे पच्चीस वर्ष पूर्व छटा दिखाकर मोहित करती थी वैसे ही आज भी कर रही है। आज भी नीचे घाटी मे भरे बादलों के अछोर सागर पर नीली-काली पहाड़ियाँ सिर पर चाँदी की पिछोरे (चादरें) ओढ़े तैरती दिखाई देती है और इन पहाड़ियों को काले कपड़े पहने उज्ज्वल-मुखी युवतियों के रूप मे देखा जा सकता है। यह दिखाई तो जरूर देता है परन्तु इस आत्मप्रवंचना से लाभ ?

और, यदि सचमुच ही उज्ज्वलमुखी युवती काले कपड़े पहन कर सामने बैठ मुस्कराती रहे, तो भी क्या ? इस से अनुभव होने वाले रोमाँच की अनुभूति कितनी देर तक रहेगी ? उस में सार क्या ? जल्दी ही उस का अन्त नही हो जायगा ? उस सुन्दरी को सराहने वाले भोगी का शरीर, बुढ़ापे से जर्जर हो कर, छप्पर के सड़े हुए फूस की तरह विरूप और नष्ट नही हो जायेगा ? शरीर और शरीर की अनुभूतियाँ, दोनो का ही अन्त निश्चित है। बेसुधी मे सुखी हो कर अपने आपको ठगने से लाभ ?

अब मैं बहुत अधिक नहीं चल पाता हूँ, न मुझे चलना ही चाहिये। इसलिये जब मकान से बाहर निकलता हूँ तो अलमोड़ा तक न जा कर 'नारायण तिवाड़ी देवाल' या उस के समीप बने 'हैलेट टैंक' तक ही जाकर लौट आता हूँ। पिछले पच्चीस बरस मे 'नारायण तिवाड़ी देवाल' के अलमोड़ा वाले छोर पर घने पांगरों की छाँव में कुछ और दुकानें बन गयी हैं। चहल-पहल बढ़ गयी है। चाय की वह दुकान अब नये सिर से बन गयी है और बूढ़े की जगह एक नौजवान उस पर बैठने लगा है। इस के सामने की दुकान की दूसरी मंजिल पर बनी खिड़की को कैसे न पहचानता ?....यह लोग मुझे नहीं पहचानते, यह अच्छा ही है।

अपनी उस मूर्खता को अच्छी तरह समझ लेने के लिये मैं फिर उसी दुकान पर, उसी जगह बैठ कर कई बार चाय पी चुका हू और उस खिड़की की ओर भी देखा है। खेलते और रोते हुये बच्चे उस खिड़की से दिखाई देते

है। एक शिथिल शरीर बुढ़िया को भी देखता हूं जो अपने शरीर की चिन्ता नहीं करतीं। उस की कनपटियों से ओठों तक पड़ गयी झुर्रियों ने उस के गालों में गड्ढे डाल कर चेहरे को ऊंची नाक के दोनों ओर खींच लिया है। कभी वह किसी काम से थकी सी नीचे दुकान के दरे की दहलीज पर ही आ बैठती है। मेरा विश्वास है कि यह वही है, एक दिन जिस की छवि की स्मृति साथ ले जाने के लिये मैने मार खाने की आशंका सिर ली थी। आज यह चौंक कर अपने आप को नही छिपाती। कोई देखना चाहे तब तो वह छिपाने की भी बात सोचे। इस का वह आकर्षण सचमुच भ्रम ही तो था।

'नारायण तिवाड़ी देवाल' से लौट कर मन सौंदर्य के आकर्षण और सुख के पीछे भागने की निस्सारता समझ पाने के बोझ से बहुत निरुत्साह हो रहा था। पलग पर लेट गया। सदा शुद्ध वायु की पहुंच में रहने के लिये खिड़की के सामने लेटता हूं और नजर खिड़की से बाहर स्वेच्छा से उगी 'कौसमोस' 'ब्लेड्स' और कई सफेद फूलों की झाड़ियों और उन पर लिपट गयी 'मार्निग ग्लोरी' के नीले फूलों की बेलों पर पड़ती रहती है। इन के आगे दिखाई देती है नीचे उतरती हुई घाटी के पार दूर नीली काली पहाड़ियों की एक के आगे दूसरी फैलती जाती लहरें और उन के ऊपर से झाँकती बर्फानी झाग।

× × ×

फूलो की इन झाड़ियों पर तितलियां उजलत और बेसुधी में उसी प्रकार मंडरा रही है जैसे मेल के दिनों से हरिद्वार के स्टेशन पर रंग-बिरंगी भीड़ गाड़ी मे जगह पाने के लिये बेचैन होती है।

पच्चीस बरस पहले भी ऐसी ही तितलियों को फूलों पर ऐसे ही मंडराते देखा था और तब भी हिमालय की उन चोटियों पर वह बरफ नीले आकाश को भेद कर अभिमान से ऐसे ही सिर उठाये थी। यह क्या वे ही फूल हैं?··· वही तितलियाँ है··· और क्या वही बरफ है? ····फूल और तितली का जीवन कितने दिन का?···सूर्य की किरणों के स्पर्श से विह्वल हो कर बह जाने वाली बरफ की स्थिरता कितने समय की? फूल, तितलियाँ और बरफ अपने-अपने सौंदर्य का प्रयोजन पूरा कर के चले जाते हैं।···चले कहां जाते हैं? वे तो कहीं चले नहीं गये। सामने मौजूद है····वे तो अमर है। इस सृष्टि और संसार को क्षण भंगुर बताने वाले मनुष्य व्यक्ति की तुलना में तो वे अनादि और अनंत है; उन का सौन्दर्य अमर है। मनुष्य ने उन की परम्पर

का अभाव कब देखा है ? वाल्मीकि और कालिदास के समय में भी यह सौन्दर्य ऐसा ही था और आज भी है ।

और समीप के सोते से बहने वाली नाली का यह कल-कल शब्द क्या कहता है ? कितने सौ वर्षों से यह नाली बह रही है ? इस नाली या किसी भी नदी में बहने वाले जल के कणों में कितनी स्थिरता और अमरता है ? इन कणों का प्रवाह ही तो अमर है, कोई कण अमर नहीं । यदि जल के कण ठहर कर अपनी अस्थिरता और क्षण-भंगुरता की बात सोचने लगें ?

जल के इस प्रवाह में जल के प्रत्येक कण का अपने आगे और पीछे के कणों से सम्बन्ध ही उस कण का जन्म और मृत्यु है । जल के कणों का अपने आगे और पीछे के कणों से यह सम्बन्ध ही प्रवाह में उस के स्थान को निश्चित किये है । वैसे ही क्या मनुष्य की परम्परा से व्यक्ति की भी स्थिति नहीं ?······ मनुष्य समाज के प्रवाह में वह कौन कातर और मूर्ख था जिस ने मनुष्यों के प्रवाह की अमरता के विषय में शंका पैदा कर 'मनुष्य व्यक्ति' को कातर और अनुत्साही बना दिया ? 'मनुष्य' को यों ठगने का प्रयोजन क्या है ? उसे जीवन के उत्साह से विमुख करने का प्रयोजन क्या है ?········ बेचैनी के कारण लेटा न रह सका । उठ कर पलंग से पांव लटकाये बैठ गया ।

इस मकान में आ कर ठहरने के समय, मुझ से पहले रह जाने वाले रोगी के रोग के बचे हुए कीटाणुओं को समाप्त कर देने के लिये नये सिरे से चूना-कलई करवा ली थी । कमरे के दायीं ओर की दीवार में अंगीठी के ऊपर एक तस्वीर, किसी अंग्रेजी पत्रिका से फाड़ी हुई, बिना फ्रेम और कांच के ही महीन कीलों से दीवार में जड़ी हुई है । मकान में कलई करवाते समय इस तस्वीर को उतार कर फेंक देना स्वाभाविक था परन्तु··· ······ तस्वीर में चाय के बगीचे की झाड़ियों से पत्ती चुनती उस युवती ने झाड़ी से आंख उठा, मुस्कुरा, कर मेरी ओर देखा । मैं रोग और कीटाणुओं के भय को भूल गया ।

उस तस्वीर को वहीं रहने दिया । इस चित्र में इतना सामर्थ्य है कि इस चित्र के रहने से कमरे में अकेलेपन का भय अनुभव नहीं होता । अब फिर उसी चित्र की ओर देख रहा हूं । वह युवती सोते में जीवन के उत्साह का उच्छ्वास भर कर मुस्कराती आंखों और स्पन्दित ओठों से एक ही बात कह रही है········"जियो" !

मैंने कभी नहीं सोचा यह तस्वीर कितनी पुरानी है ? यह युवती कहां है ? हो सकता है, दार्जीलिंग के किसी चाय के बगीचे में अभी पत्ती तोड़ रही हो। हो सकता है, उस के यौवन और रूप ने मानवता के प्रवाह में अपने स्थान पर प्रवाह में अपने स्थान को अमर बनाए रखने का काम पूर्ण शक्ति से पूरा कर दिया हो। यह भी हो सकता है कि आज उस के गालों का मांस झुर्रियों के रूप में नाक के दोनों ओर सिमिट आया हो। परन्तु उस का सौन्दर्य अमर हो कर मुझ से पहले इस मकान में टिके रोगी को और आज मुझे; और जाने संसार के किस-किस भाग में कहाँ-कहाँ उत्साह और जीवन की प्रेरणा देता रहा है और दे रहा है। वह आज भी धूप में चमकने वाली हिमालय की चोटी की तरह अमर है·······!

और यदि उस दिन खिड़की की चौखट में अटे उस रूप और यौवन का चित्र मैं ले पाता तो आज उस विरूप हो गए शरीर की कितनी बड़ी देन 'मनुष्य' के लिये रह जाती ? मनुष्य के सामर्थ्य और उस के सौन्दर्य की अमरता के प्रति संदेह पैदा कर उसे निरुत्साहित करने वालों को, उसे ठगने वालों को कब तक क्षमा किया जाता रहेगा ?

चन्दन महाशय

चन्दन महाशय के लिये 'महाशय' उपाधि ही निश्चित हुई क्योंकि लोग-बाग उन्हें कोई दूसरी उपाधि देने के लिये तयार नहीं थे। पंडित, बाबू लाला, ठाकुर, मन्नी, ये सभी उपाधियां अलग-अलग जातियों की अपनी-अपनी बपौती है। किसी भी जाति के लोग अपनी जाति की बपौती उपाधि चन्दनलाल को न देना चाहते थ; अर्थात् किसी भी जाति वाले चन्दनलाल को अपनी जाति में मिला लेने को तैयार नही थे। कारण यह कि चन्दनलाल 'ओछी' जाति के समझे जाते थे।

चन्दनलाल के व्यक्तित्व की ऐसी उपेक्षा कर देना भी सम्भव नहीं था कि उन्हें चन्दू, चन्दवा या चन्दना कह कर ही पुकारने से काम चल जाता। उन की लहीम शहीम मूर्ति, निर्भय मुद्रा और बात करने का अधिकार पूर्ण ढंग ऐसा था कि एक बार मुलाकात हो जाने पर दुबारा परिचय की आवश्यकता नहीं थी। यदि किसी अहमन्य व्यक्ति को ऐसी आवश्यकता अनुभव होती तो चन्दनलाल की गालियों की अनुपम मौलिकता उन की स्मृति को स्थायित्व दे देती।

चौड़े भरपूर कंधों से हाथी की सूंड़ों की तरह लटकती उन की लम्बी भुजाओं के सिरे पर बड़े-बड़े हाथ अपनी शक्ति का प्रभाव दिखाने के लिये खजाते रहते। अभिमानी व्यक्ति की ओर गरदन झुका कर देखने का उन का ढंग ऐसा था जैसे मुर्गियों के गिरोह में कलगीदार मुर्गा धूल में रेंगते किसी

कीड़े की ओर देखता है। उन की आखों में छाई लाली, अपने क्रोध की कमी भी घट न पाती। इस लाली को बढ़ाने के जितने भी भौतिक उपकरण हो सकते हैं, उन का प्रयोग चन्दन महाशय पूर्ण विज्ञापन के साथ करते थे। सब से महत्वपूर्ण बात थी, चन्दन महाशय का कभी किसी के आगे हाथ न फैलाना। उलटे यदि कोई मदद के लिये गिड़गिड़ाता तो वे दस-पांच रुपए से मदद के लिये तैयार रहते। अपनी इज्जत की रक्षा के लिये उन की इज्जत करना जरूरी था।

कुछ लोगों ने चन्दन महाशय को पहलवान पुकार कर उन के लिये उपाधि की समस्या निबटा देनी चाही थी परन्तु इस विषय में उन की आपत्ति का उग्र रूप देखकर फिर किसी को ऐसा साहस न हुआ। पहलवान कहलाने में महाशय चन्दनलाल को आपत्ति थी कि यह उन की "विद्वत्ता" और "गहरी राजनैतिक सूझ" पर परदा डालने के लिये उन के शरीर की विशालता के प्रति विद्रूपमय लक्ष्य था। चन्दन महाशय अंग्रेजी पढ़े, सफेद-नोकीली टोपी और कुर्ता-धोती पहनने वालों की इस चाल को भांप गये। चन्दन महाशय को पहलवान बना देने का मतलब था उन से बुद्धि की बात कहने और राज-नैतिक नेतृत्व का अधिकार छीन कर अपनी लीडरी जमा लेना। स्वयं राजनैतिक लीडर बन जाने की इच्छा करने वालों का यह कमीनापन वे स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं थे। फलतः हिन्दू जाति के महापुरुषों की सांझी उपाधि 'महाशय' से ही उन का नाम विभूषित किया गया।

चन्दन महाशय आमूल क्रांति के उपासक थे। वे नगर के राजनैतिक गुरु और पथप्रदर्शक होने का दावा करते थे। उन के विचार में उन की गिनती देश और प्रान्त के प्रमुख नेताओं में ही होनी चाहिये थी क्योंकि वे कांग्रेस के सबसे पहिले आन्दोलन के समय से जेल जाते आये थे। जनता उन की बात को देश के प्रमुख नेताओं के समान महत्व नहीं दे पाती थी, इस का कारण चन्दन महाशय की दृष्टि में, जनता का भोलापन और नगर के राजनैतिक नेता बन बैठने वाले सरमायादार लीडरों की संकीर्णता और कुचक्र ही था। अंग्रेज सरकार के राज को उलट देने के उग्र कार्यक्रम पेश करने में कोई नेता उन की बराबरी नहीं कर सका और न कोई नेता उन की बराबरी में बहत्तर घंटे तक अपने पक्ष के समर्थन में बहस करने की क्षमता रखता था।

सन् १९२१ में वे उसी राजनैतिक अपराध के लिये जेल गए थे जिस अपराध में पंडित मोतीलाल, जवाहरलाल और अली भाई जेल में बन्द किए गए थे। इन नेताओं के समान ही राजनैतिक अपराध करने पर भी जेल में चन्दन महाशय के साथ अपमानपूर्ण व्यवहार किया गया और इन नेताओं के साथ सम्मानपूर्ण। उस समय के कायदे-कानून के अनुसार चन्दन महाशय को जेल का गोल गले का धारीदार कुर्ता और जाँघिया पहिनने और गले में कैदी के नम्बर की तख्ती लटकाने के लिए मजबूर किया गया। उन्हें हाथों पर से बिखर जाती रेतीली रोटी और लोहे के तसले मे लेकर काली दाल खाने के लिए विवश किया गया और उन्होंने देखा कि नेताओं के लिये फलों और मिठाइयों के झाबे भेजे जाते थे। जेल के अधिकारी नेताओं से ढंग तकल्लुफ से बातचीत करते थे जैसे अपनी बेटी का सम्बन्ध जोड़ने की बात कर रहे हों। यह भेदभाव और अन्याय देखकर चन्दन महाशय को नेताओं और अँग्रेज़ सरकार दोनों पर ही क्रोध आया। नेताओं के प्रति इसलिए कि जो दुश्मन के आदर और तकल्लुफ को स्वीकार करता है वह उस से लड़ेगा क्या? और पक्षपात करने वाली अंग्रेज सरकार के प्रति इसलिए कि अंग्रेज सरकार अपनी बिरादरी के काले रईसों को देश की जनता से फोड़ कर अपना साथी बनाए रखने के लिये फुसला रही थी।

जेल के अनुशासन को मानना चन्दन महाशय शत्रु के आगे सिर झुकाना समझते थे। जेल का अनुशासन न मानने से उन्हें काल-कोठरी में बन्द होने की सजा मिलती थी। काल-कोठरी के एकांत मे बन्द रह कर चन्दन महाशय ने मनन किया और अपनी राजनीति निश्चय कर ली। इस राजनीति का तत्व यह था कि अंग्रेज़ बंगलों मे रहने के लिए, मजे से गोश्त और शराब उड़ाने के लिए गरीब हिन्दुस्तान पर राज करता है। गोरा अमीर राजा और काला अमीर उस का मुसाहब गरीब, गुलाम है। और झगड़ा अमीर और गरीब का है,। गोरा अमीर अपना राज चलाने के लिये काले गरीब को अपना नौकर बनाये रखने के लिये अपना राज चलाता है। दुनिया में इंसाफ और आजादी तभी कायम हो सकती है जब अमीर-गरीब का भेद न रहे।

जेल में यातना पाकर छूटने के बाद जब चन्दन महाशय ने कांग्रेस के बड़े बड़े नेताओं को अंग्रेज लाट और गवर्नरों की कौंसिलों का मेम्बर बन जाने के लिये तैयार हो जाते देखा तो उन्हें अपनी राजनैतिक सूझ के विषय में

कोई सन्देह नहीं रह गया। उन्होंने देश की आजादी के लिये किसान-मजदूर के राज का प्रचार शुरू कर दिया। उन्होंने ऐलान करना शुरू कर दिया कि अमीर और गरीब मे, भेड़िए और बकरी मे कोई दोस्ती नही हो सकती। कांग्रेस के जिम्मेवार और सम्मानित नेता उन्हे बहका हुआ व्यक्ति बनाकर उन की उपेक्षा करने लगे।

कांग्रेस के नेताओं से यह अपमान पाकर चन्दन महाशय काँग्रेस को अपना और अपनी जैसी जनता का शत्रु मान कर कांग्रेस के विरुद्ध प्रचार करने लगे कि साम्राज्यवादी अंग्रेज की काली बिरादरी वे ये लोग जनता की स्वतंत्रता नही अपना ही स्वार्थ पूरा करना चाहते हैं। काली और गोरी सरमायादारी बिरादरी का राज मेहनत करने वाली जनता को विवश बनाये रखने के लिए हैं। सरमायादारों के मंदिर, मस्जिद, गिरजा, सरमायादारो के ब्याह, शादी और परिवार के नियम और उन की अदालत सब कुछ हाथ-पैर से मेहनत करने वालों को बेबस बनाए रखने के लिए हैं। चोरी न करने और झूठ न बोलने के उपदेश सरमायादारों के आराम पर आँच न आने देने के लिये हैं। सरमायादारों का राज मिटाने के लिये उन की हुकूमत के सब फंदों को तोड़ देना जरूरी है। सरमायादारों के राज का, उन के मजहब का, उन के रिवाज सब बातें जुल्म हैं। इन में से किसी को भी मानना गुलामी को मंजूर करना है।

चन्दन महाशय को दृढ़ विश्वास हो चुका था कि पूंजीवादी व्यवस्था में धन कमाने का साधन ईमानदारी से मेहनत करना नहीं बल्कि गरीबों की जेब से पैसा खींच लेने की चतुरता है। ईमानदारी और मेहनत सिर्फ गुलाम और गरीब के लिये हैं। इस राज में जो ईमानदारी से मेहनत करेगा, गुलाम और गरीब रहेगा, जो चालबाजी से मुनाफ़ा कमायेगा, अमीर होगा। गरीबों की मेहनत से मुनाफा कमाना सब बेईमानी की जड़ है। यही मतलब पूरा करने के लिये गरीबों पर सरमायादारों की हुकूमत कायम की जाती है। मुनाफा कमाने के लिये घी में कचालू और चरबी मिलाई जाती है। सरकारी काम में पब्लिक का पैसा हड़पने के लिये सरकार के अहलकारों को रिश्वत दी जाती है।

जेल में रह कर चन्दन महाशय देख आए थे कि सजा अपराध करने के कारण नहीं मिलती बल्कि जेब में काफी रकम न होने से वकील, पुलिस और सरकार को खुश न कर सकने के कारण मिलती है। जैसे गरीब आदमी पंडे को गोदान न कर सकने के कारण पापी बन कर नरक में जाता है वैसे

ही गरीब आदमी जेब में पैसा न होने पर पेट भरने और जिन्दगी का मजा चखने की कोशिश करने से जेल चला जाता है। पूंजीवादी सरकार और उस की व्यवस्था के किसी भी नियम को मानना उन्हें अपने आत्मसम्मान और राजनैतिक धर्म के विरुद्ध जान पड़ने लगा और ईमानदारी से मेहनत करना गुलामी को स्वीकार करना।

चन्दन महाशय ने अपनी राजनीति को वैयक्तिक जीवन में अपनाने का निश्चय कर लिया। उन्होंने ईमानदारी से मेहनत न करने की और पूंजीवादी शोषण और गुलामी में न फंसने की प्रतिज्ञा कर ली। अपने निर्वाह के लिये ईमानदारी से मेहनत न करके पूंजीवादी व्यवस्था को ठगने का निश्चय किया। इस प्रयोजन से उन्होंने एक रसायनशाला आरंभ की जिस में सब से पहिले 'हाजमे की जायकेदार गोलियां' बनाई गई। जिस समय ये गोलियां बाजार में आई, इन का रहस्य किसी को मालूम नहीं था। कुछ रुपया कमा लेने के बाद में चन्दन महाशय ने पूंजीवादी व्यवस्था के प्रपंच की पोल खोलने के लिए अपने इस चमत्कार का वर्णन स्वयं ही सार्वजनिक रूप से करना आरम्भ कर दिया। 'हाजमे की जायकेदार गोलियों' के आविष्कार की कहानी यह है:—

१९२१ में, जेल में 'राजनैनिक चिन्तन' कर के जब चन्दन महाशय रिहा हुए तो वे यह समझ चुके थे कि किसी भी प्रकार का शारीरिक परिश्रम करने से वे समाज में सम्मानित नेता का आदर नहीं पा सकते। समाज में सम्मानित होने के लिए दोनों बातें आवश्यक हैं: पैसा भी हो और आदमी शारीरिक मेहनत भी न करे। उन के संकट की गुरुता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि जेल से रिहा होते समय उन के पास कुल जमा पूंजी तीन रुपए ही थी। इतनी पूंजी को ले कर उन्होने पूंजीवादी व्यवस्था को धोखा देकर अपना निर्वाह करने के लिए कारोबार की चिंता आरम्भ की :—

चन्दन महाशय को शहर की किराना मंडी में एक बनिए की दुकान के सामने लाल मिर्च के बीजों की छोटी ढेरी दिखाई दी। मिर्चे बिक जाने पर चौतरे की सफाई के लिए झाड़ू लगा कर बीजों को बटोर दिया गया था। चन्दन महाशय ने बनिये से इन गिरे हुए बीजों की ढेरी का सौदा किया। दो आने में यह कूड़ा खरीद कर अपने अंगौछा में बांध कर वे सब्जी मंडी की ओर चले।

एक कुंजड़े की दुकान के आगे फटे, सूखे और सड़े नीबुओं की डलिया उन्हें दिखाई दी। इन नींबूओं का थोक सौदा अठन्नी में हुआ और उन्होंने माल अंगौछे के दूसरे सिरे में बांध लिया। रास्ते में तीन चीजें उन्होंने और खरीदीं :—चार आने का सेंधा नमक, दो आने का काला नमक और चार आने की हींग।

अपनी कोठरी मे लौट चन्दन महाशय नाक और मुंह अंगोछे से बांध कर मिर्चों के बीज कूटने के लिए बैठे। आपत्ति उन्हें परिश्रम करने में नहीं, परिश्रम करते देखे जाने में ही थी। बीजों के यथासंभव बारीक कुट जाने पर उस मे दोनों नमक और हींग मिला दी गई और इस चूरन को सड़े नींबुओं के रस में गूंध कर गोलियां बना ली गईं। बाजार से बादामी कागज खरीद कर छोटे-छोटे लिफ़ाफे बना उस में बीस-बीस गोलियां रख चन्दन महाशय ने इन गोलियों की थोक और फुटकर बिक्री आरंभ की। इन चमत्कारपूर्ण गोलियों को कलकत्ते के प्रसिद्ध 'सर्वदानन्द औषधालय' का आविष्कार बताया गया। गोलियों को बेचने में चन्दन महाशय को लगभग एक मास लगा। इस एक मास में दस गोलियों की बिक्री से दो वक्त भरपेट खाने के साथ दूध-दही और पाचक पेय का यथेष्ट व्यवहार करने के बाद भी चन्दन महाशय के पास तीस रुपये की पूंजी शेष रह गई। दवा के नाम पर यह ज़हर बेचने से चन्दन महाशय को कोई क्षोभ नहीं हुआ; क्योंकि उन की यह धारणा थी कि बदहजमी उन्हीं लोगों को होती है जो श्रम न करके आवश्यकता से अधिक भोजन करते है। हराम का खाने वालों को अपनी इस गोली से धोखा देकर अपना निर्वाह आराम से चलने में उन्हें कोई अन्याय नहीं जान पड़ा।

•

अधिक रुपया पाने के लिये चन्दन महाशय को गहरी जेबों में हाथ डाल सकने का उपाय सोचना पड़ा। पूंजीवादी अव्यवस्था का यह रहस्य वे समझ चुके थे कि पैसे वाले लोग अपनी जरूरी आवश्यकतायें पूरी करने और कष्ट से बचने के लिये उतना पैसा खर्च नहीं करते जितना कि व्यसन में और अपना बड़प्पन दिखाने में करते हैं। गहरी जेब वालों की जेब से यथेष्ट पैसा निकाल सकने के लिये चन्दन महाशय ने 'पलंगतोड़ गोलियों' का आविष्कार किया। उन्होंने तंबोलियों को अपने षड़यंत्र में सहयोगी या दलाल बना कर इन गोलियों की गुपचुप बिक्री आरम्भ की। जब इन गोलियों को बिक्री से रुपये

छनकते हुए आने लगे तब उन्हें और भी अधिक विश्वास हो गया कि पूंजी-वादी व्यवस्था की नींव अनाचार और धोखे पर ही है।

पूंजी जमा हो सकने की प्रक्रिया यह है कि खर्च आय से कम हो। परन्तु चन्दन महाशय अपने खर्च पर संयम का प्रतिबन्ध लगाने के लिये तैयार नही थं। पूंजीपति श्रेणी के प्रति उन की विरोध की भावना का एक रूप था, रुपये से सम्भव सभी भोगों को सार्वजनिक रूप से भोग कर दिखा देना। ज्यों-ज्यों रुपया उन के हाथ में आता गया उन के भोग की मात्रा और उस से अधिक भोग का प्रदर्शन बढ़ते गया।

रुपये को उच्छृंखलता के जोर से पूंजीवादी नैतिकता की धारणाओं का सार्वजनिक तिरस्कार करने में चन्दन महाशय को बहुत संतोष होता था। इस उद्देश्य से वे शराब और भांग का व्यवहार सार्वजनिक रूप से करते थे। कमर में केवल लाल अंगोछा लपेटे बाजार मे घूम कर सूट-बूट पहिने हुए बाबुओं या सफेद कुर्त्ता-धोती पहने रईसों से उलझ कर उन की हेठी करने में उन्हें मानसिक सुख अनुभव होता। बिना बस्त्र पहिने उन के बाजार में घूमने पर यदि भले आदमियों को एतराज होता तो इस एतराज की अवहेलना करने के लिये वे और भी अधिक नग्न रूप में बाजार में दिखाई देते और बाजार में व्याख्यान दे डालते —"ऐ, गरीबों की मेहनत के चोर अमीरो, तुम अपने कपड़ों के जोर पर आदर चाहते हो ? कपड़ों का आदर पूंजी का आदर है। तुम्हारे शरीर में आदर की कोई बात नहीं। तुम्हारा शरीर हमारे जैसा ही है ! तुम कपड़े दिखा कर आदर चाहते हो ! हमारे पास कपड़े न सही पर हमारी आजादी मे दखल देने का हक किसी को नही। जिसे बुरा लगता हो वह अपनी आंखें मूंद ले।" वे अपने मित्रों में कहते—"कोई अपनी मोटर और शाल-दुशाले दिखा कर लोगों को भौंचक करता है कोई अपना नंगापन दिखा कर ! जैसे महात्मा लोग। हम किस से कम है?"

कांग्रेस से नाराजगी होने पर भी अंग्रेज सरकार के प्रति अपने विरोध के कारण चन्दन महाशय को प्रत्येक आन्दोलन मे जेल जाना पड़ता था और जेल से वे और अधिक कांग्रेस-विरोधी होकर लौटते। कोई भी राजनैतिक सभा होने पर उस में व्यख्यान देना वे इसलिए अपना अधिकार समझते थे कि वे नगर के सफेदपोश और मोटर सवार नेताओं से पीछे क्यों रहें ? पूंजीपति-नेताओं को उन के पद और सम्मान छीन लेने का क्या अधिकार है ? कांग्रेस

को वे जनता और किसान-मजदूर की चीज समझते थे और कांग्रेस पर अधिकार जमा लेने वाले नेताओं को धोखेबाज पूंजीपति और अपना व्यक्तिगत प्रतिद्वंदी ।

नगर में कम्युनिस्ट लोगों का आंदोलन आरम्भ हुआ । यह पार्टी किसान-मजदूर-राज्य का नारा लगाती थी और सफेदपोश मोटर-सवार नेताओं के नेतृत्व को स्वीकार नहीं करती थी । यह पार्टी देश की स्वतंत्रता केवल गोरी सरकार को हटा देने मे नहीं बल्कि देश से सरमायादारी समाप्त कर देने में समझती थी । चन्दन महाशय को सन्तोष हुआ कि आखिर लोगों को उन का 'राजनैतिक दृष्टिकोण' मानना पड़ा, उन का 'राजनैतिक ज्ञान' सत्य प्रमाणित हुआ । कम्युनिस्ट पार्टी को अपना अनुयायी समझ कर चन्दन महाशय को इस पार्टी से सहानुभूति हो गई । वे कांग्रेस के नेताओं की तुलना मे कम्युनिस्टों की प्रशंसा करने लगे और कम्युनिस्ट पार्टी के पर्चों और पुस्तकों को पढ़े बिना उन का समर्थन करने लगे ।

कामरेड लोगो ने चन्दन महाशय को भटका हुआ राजनैतिक-पीड़ित मान कर उन के प्रति सहानुभूति प्रकट की । उन की दृष्टि मे चन्दन महाशय सरमायादारों की सार्वजनिक सम्मान की ठेकेदारी का विरोध कर रहे थे । चन्दन महाशय की सार्वजनिक सम्मान पाने की इच्छा मे कामरेडों को कोई अनाचार नहीं दिखाई दिया । कामरेड लोग कांग्रेस पर पूंजीपतियों की ठेकेदारी के विरुद्ध चन्दन महाशय की पीठ ठोंकने लगे ।

चन्दन महाशय की उच्छृंखलता से आतंकित 'भले मानुस' लोगों ने चन्दन महाशय और कामरेड लोगों मे सहानुभूति का प्रदर्शन देख कर चन्दन चन्दन महाशय को 'कामरेड' की उपाधि दे दी । चन्दन महाशय को 'कामरेड' की उपाधि देने का प्रयोजन दोहरा था । एक तो चन्दन महाशय की जगजानी उच्छृंखलता को कम्युनिजम का चित्र बता देने से, भलमनसाहत का आदर करने वाले लोगों में कम्युनिजम के प्रति अश्रद्धा हो जाय और दूसरा यह कि चन्दन महाशय को 'कामरेड चन्दन' घोषित कर के उन का कांग्रेस के नेतृत्व का दावा रद्द कर दिया जाय । अपने आप को अत्यंत चतुर समझने वाले चन्दन महाशय पूंजीवादी भलमनसाहत की रक्षा के लिये पैतरा खेलने वाले लोगों के इस जाल में फंस गए और अपने आप को स्वयं ही 'कामरेड' पुकारने लगे ।

चन्दन महाशय को कामरेड की उपाधि दे दी जाने पर कम्युनिस्टों को 'कामरेड चन्दन' के व्यवहार के प्रति चिन्ता होने लगी। कोई न कोई कामरेड किसी न किसी बात पर उन से उलझने लगा। सब से पहिला आदेश कामरेड चन्दन को यह दिया गया कि वे कम्युनिज्म के संबंध में मार्क्स की पुस्तकें पढ़ें। यह मानसिक दासता 'कामरेड चंदन' को वैसे ही जान पड़ी जैसे पूंजीवादी नैतिक धारणाओं के सामने सिर झुका देना था। उन्होंने विरोध किया:—"कम्युनिज्म तो इन्सान की आजादी है। उस के लिए किसी की किताबें पढ़ने की क्या जरूरत ? कम्युनिज्म तो आदमी की अपनी इच्छा और समझ है और उस की आजादी।"

'महाशय चन्दन' का 'कामरेड' पुकारा जाना नगर के कम्युनिस्टों के लिए बड़ी भारी मुसीबत बन गई। जनता का नेतृत्व कर पाने के लिए कामरेड लोग अपने आप को सदाचारी और आदर्श रूप मे पेश करने के लिए चिन्तित थे। प्रत्येक कामरेड दूसरे कामरेड के चरित्र का उत्तरदायित्व अपने ऊपर समझता है। कामरेड लोग सामाजिक सभ्यता और आचार के सभी बंधन 'कामरेड चन्दन' पर लगाने लगे जिन का 'चन्दन महाशय' सदा से विरोध करते आए थे। इस के परिणाम में 'कांग्रेस द्वारा घोषित कामरेड चन्दन' और 'मार्क्स के अनुयायी कामरेडों' में गरमा-गरम बहसें होने लगीं।

काँग्रेस द्वारा घोषित 'कामरेड' चंदन महाशय बाजार में खड़े होकर चोरी करने का समर्थन इस तर्क से करते थे कि पूंजीवादी व्यवस्था सम्पत्ति के आधार पर कायम है। पूंजीवादी पूंजी के हथियार से शोषण करता है। हमें पूंजी और सम्पत्ति को मिटाना है। इसलिए सम्पत्ति की चोरी करने में खराबी क्या ? वे बाजार में खड़े होकर सतीत्व की धारणा की निन्दा इसलिए करते थे कि पूंजीवादी व्यवस्था में स्त्री को पति अपनी सम्पत्ति समझता है। पतिव्रत धर्म का मतलब केवल पति की गुलामी है। स्त्री और पुरुष की व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अर्थ स्त्री और पुरुष की पूर्ण स्वतन्त्रता है। पुरुष सम्पत्ति के जोर पर कई-कई औरतें रखता है तो सपत्तिहीन स्त्री क्या करे ? जो सम्पत्तिहीन पुरुष विवाह नहीं कर सकता वह क्या करे ? वे बाजार में खड़े होकर शराब पीना उचित समझते थे क्योंकि पूंजीपति रेशमी पर्दे के पीछे शराब पीना केवल अपना ही अधिकार समझता है और गरीब को बाजार में खड़े होकर शराब पाने पर हवालात भिजवा देता है।

चंदन महाशय की संपूर्ण राजनीति सन्तोष के सब साधनों पर अपना नियंत्रण जमा लेने वाले लोगों के विरुद्ध असन्तुष्ट व्यक्तिगत विरोध था और उन्होंने समझा कि कम्युनिस्ट पार्टी के मोर्चे से उन के इस व्यक्तिगत विरोध को प्रदर्शन का अवसर मिल सकेगा और सफेदपोश मोटर-सवार नेताओं के विरुद्ध यह उन के नेतृत्व का मोर्चा होगा।

परन्तु उन की आशा निराशा में बदलने लगी क्योंकि कम्युनिस्ट लोग सभी आर्थिक और राजनैतिक प्रश्नों को व्यक्तिगत नहीं श्रेणीगत रूप में ही देखना चाहते थे। पूंजीवाद में व्यक्तिगत के दमन और अवसरहीनता का उपाय कम्युनिस्ट व्यक्तिगत उच्छृंखलता के रूप में करना कायरता और अपराध मानते थे। उन की दृष्टि में इस का उचित उपाय था, शोषित श्रेणी की शक्ति और सार्वजनिक ढंग से साहस पूर्वक व्यवस्था को बदलने की मांग करना। वे कानून को व्यक्तिगत रूप मे तोड़ना नहीं बल्कि सार्वजनिक शक्ति से उसे बदल देना उचित समझते थे।

ज्यों-ज्यों नगर में "चन्दन महाशय" को नई मिली उपाधि "कामरेड" का प्रचार होने लगा त्यों-त्यों नगर के कम्युनिस्टों को "कामरेड" शब्द के प्रति जनता की अश्रद्धा की आशंका बढ़ने लगी। कम्युनिस्ट लोग महाशय चन्दन को कामरेड मानने के लिए तैयान नहीं थे और न उन्हें अपने मंच पर उन की "चन्दनवादी" विचारधारा का प्रतिनिधित्व करने का अवसर देने के लिये तैयार थे।

एक रोज इक्के वालों की हड़ताल के सवाल पर कम्युनिस्टों द्वारा आयोजित सभा में चन्दन महाशय भी मौजूद थे। वे बार-बार मंच पर आ कर व्याख्यान देने के लिए आगे बढ़ रहे थे। कामरेडों ने उन्हें व्याख्यान देने का अवसर नहीं दिया। चन्दन महाशय के आग्रह करने पर कामरेडों नें इन्कार में उत्तर दिया :—"आप न इक्केवाले हैं और न हमारी पार्टी के मेंबर। आप के लिए यहां जगह नहीं है।"

महाशय चन्दन ने अपनी आदत के अनुसार हाथ चला दिया। भरे बाजार में हाथ चला कर दूसरे की इज्जत झाड़ देने का उन का तरीका सदा से सफल होता चला आया था परन्तु कामरेड लोग शायद इस के लिए पहले से ही तैयार थे। कामरेडों ने उन्हें चारों ओर से घेर कर उन की खूब पिटाई की।

शहर में कामरेडों की आपसी फूट का हल्ला हो गया। अवसर देख कर पुलिस ने बहुत से कामरेडों को हिरासत में ले लिया। कांग्रेस के शान्ति प्रिय नेता इस अत्याचार से बहुत दुखी हुये। उन्होने आवाज उठाई कि वे कांग्रेस के एक बहुत पुराने, अनुभवी, त्यागी, तपस्वी और जनसेवी कार्यकर्ता का कम्युनिस्टो द्वारा अपमान नही सह सकते। कामरेडों के विरुद्ध प्रचार करने और उन्हे जेल भिजवाने देने के लिए कांग्रस जनों ने मामले को अदालत तक पहुंचा दिया।

कई दिन मामला चला और मामले के दौरान में चन्दन महाशय की प्रतिष्ठा शहर मे बढ़ाने के लिये सभायें कर के कामरेडों के विरुद्ध निन्दा के प्रस्ताव पास किये जाते रहे। मामले का परिणाम जो भी हुआ हो परन्तु इस बीच 'चन्दन महाशय' सचमुच प्रतिष्ठा के आसन पर पहुच कर कांग्रेस के प्रतिष्ठित सदस्य बन गए। मुकद्दमा हार जाने पर भी वे कांग्रेस के नेतृत्व की बाजी जीत ही गये।

कुल मर्यादा

जब कहीं पुरुषार्थ और भाग्य की बात चलती है तो गंगाधर मिश्र उत्तेजित हो कर अपने प्रयत्नों की विफलता की कहानी सुनाने लगते है। मतलब यही होता है कि उन्हों ने सदा ही सद्भावना से भाग्य से लोहा लेने की चेष्टा की परन्तु होनहार की जबर्दस्त मुट्ठी से वे कभी छूट नहीं पाए। बात वे आरम्भ करते हैं सदा ही अपनी उठती जवानी के दिनों से।

उन का परिवार परम्परावादी था। परम्परावाद का राजनैतिक पहलु राजभक्ति होता है। गंगाधर मिश्र के पिता अपने इलाके के काफ़ी बड़े जमींदार थे। अँग्रेज़ी राज में सरकारी अफ़सरों के कृपा-पात्र हो कर वे देहाती प्रजा मे अपनी प्रतिष्ठा बनाए हुए थे। मामले-मुकद्दमे चला-चला कर उन्होंने अपनी जमीदारी का काफ़ी विस्तार किया था। अँग्रेजी सरकार की छत्र-छाया में अपनी ज़मींदारी का विस्तार करने के लिये, अपने अधिकार पर अँग्रेज़ी सरकार की मुहर पाने के लिए, उन्हें अँग्रेज़ी सरकार की अदालत के पंडों वकीलों को अपनी आमदनी का एक बड़ा भाग पूज देना पड़ा था। कानून की रक्षा में ही मेहनत करने वाले किसान की पैदावार हथिया सकने के कारण, गंगाधर के पिता के मन में कानून के प्रति बहुत श्रद्धा और आदर था। उन्हें यह भी मालूम था कि इलाहाबाद हाईकोर्ट के बड़े-बड़े वकील सलाह,मात्र देने के लिए सौ रुपया प्रति घंटे के हिसाब से फ़ीस ले लेते है। इसलिए उन्हों ने अपने पुत्र को कानून की शिक्षा ग्रहण करने की सलाह दी। गंगाधर के पिता अपने

पुत्र का भविष्य उज्ज्वल करने के लिए इस से ऊँचा और क्या आदर्श समझते ? परन्तु यह आदर्श पूरा नहीं हो सका।

सन् १६३०-३१ में जब गंगाधर इलाहाबाद में पढ़ रहे थे, स्वराज्य के आन्दोलन का ज्वार बहुत ज़ोर से उठ खड़ा हुआ। इस आन्दोलन ने लोगों की भावना और दृष्टिकोण को ही बदल दिया। गंगाधर भी इस प्रभाव से न बच सके। सौ रुपया प्रति घण्टे के हिसाब से फीस लेने वाले बड़े-बड़े वकील बैरिस्टर अपने बंगलों में बैठ कर चाहे सोने के निवाले निगलते हों, जनता के हृदय से तो जयकार देश की मुक्ति के लिये आन्दोलन करने वाले नेताओं के नाम की ही उठती थी। गंगाधर स्वयं ऐसे प्रदर्शनों और जुलूसों में सम्मिलित होते थे। उन्होंने खद्दर का कुर्ता, धोती और गाँधी टोपी पहनना शुरू कर दिया था। उन के राजभक्त पिता को पुत्र का यह व्यवहार कुल की प्रतिष्ठा के लिये कलंक जान पड़ा और यह बात बहुत अपमानजनक लगी कि एक बड़े जमींदार का पुत्र देश की शासक सरकार के पक्ष में न हो कर दलित और छोटे लोगों के पक्ष में हो। इस से भी बड़ा आघात पिता को तब पहुंचा, जब गंगाधर ने छुट्टियों में घर जाने पर विवाह करने से इनकार कर दिया।

लड़कपन में ही गंगाधर की सगाई दूसरे जिले के एक बड़े भारी जमींदार के घर हो चुकी थी। सगाई के समय गंगाधर से कोई राय नहीं ली गई थी। गंगाधर के पिता का विचार था—लड़का हमारा है और सगाई हम कर रहे हैं; इस में लड़के की राय का सवाल क्या? उन की अपनी सगाई और उन के पिता की सगाई सदा से इसी प्रकार हुई थी। परन्तु जब विवाह का प्रश्न उठा, गंगाधर ने आपत्ति कर दी—"जब तक देश स्वतन्त्र नहीं हो जाता हम विवाह नहीं करेंगे।" इलाहाबाद में उस ने बीसियों देश-भक्तों को देश के स्वतन्त्र न हो जाने तक खद्दर पहिनने, जूता न पहिनने और नमक न खाने की प्रतिज्ञा करते देखा था। गंगाधर मन-ही-मन देश के स्वतन्त्रता-संग्राम का सैनिक बनने का व्रत ग्रहण कर चुके थे। स्वराज्य आन्दोलन के प्रधान नेता महात्मा गांधी ने स्वराज्य के सैनिकों को भोग विलास से दूर रह कर ब्रह्मचर्य के पालन का उपदेश दिया था। इसलिये गंगाधर ने भी ब्रह्मचर्य व्रत की प्रतिज्ञा कर ली थी।

देहात के लोगों के लिए गंगाधर के ब्रह्मचर्य व्रत की इस प्रतिज्ञा का आशय समझ पाना आसान नहीं था। परिवार वाले, सम्बन्धी और बिरादरी

के लोग ऐसी नई बात से विस्मित रह गये। सभी लोग उन्हें समझदारी से काम लेने की राय देने लगे। गंगाधर अपनी प्रतिज्ञा से हटने के लिए तैयार न हुए तो लोगों में आहिस्ता-आहिस्ता दूसरी ही बात उठने लगी -- 'नामर्द है। इसी से तो व्याह करने से डरता है। नहीं तो भला उठती जवानी में कोई व्याह से इनकार करता है ?" देहात में सम्बन्धियों और बिरादरी में गंगाधर मिश्र के नामर्द होने की बात फैलने लगी। गंगाधर लोगों से मुंह चुराने लगे। अपने देहात में रहना उन के लिये कठिन हो गया।

१९३०-३१ में देश की स्वतन्त्रता का आन्दोलन जैसा प्रबल दिखाई दे रहा था और अंग्रेज सरकार के पांव जैसे डगमगाते दिखाई दे रहे थे, उस से गंगाधर को स्वराज बरस-डेढ़-बरस से अधिक दूर नहीं जान पड़ता था। परन्तु आन्दोलन स्वराज्य पाये बिना ही शिथिल पड़ गया। गंगाधर खद्दर के कपड़े पहिनने की प्रतिज्ञा पर दृढ़ थे और विवाह करने से भी इनकार कर रहे थे। विवाह से उन का इनकार परिवार के लिये असह्य त्रास का कारण बन रहा था। कभी चिन्ता से माँ के बीमार हो जाने का समाचार मिलता और कभी क्रुद्ध पिता की धमकियाँ मिलतीं। नामर्दी के कलंक की बात भी फैल रही थी, सो अलग।

गंगाधर यह समझ चुके थे कि देश की स्वतंत्रता की राजनैतिक लड़ाई तो जीवन भर का धन्धा है, साल-छै महीने की बात नहीं। इसलिये उसे जीवन में मिला लेना आवश्यक है। वे यह भी देख रहे थे कि देश के स्वतन्त्रता-संग्राम के बड़े-बड़े सभी नेता विवाहित हैं, उन के परिवार है और अनेक नेता अपनी स्त्रियों को साथ ले कर देश का नेतृत्व कर रहे हैं तो फिर विवाह न करने की प्रतिज्ञा से अपने परिवार को नाराज़ करने और स्वयं नपुँसक कहलाने से क्या लाभ ? सोच-बिचार कर, उन्होंने विवाह कर लेने की अनुमति अपने परिवार के लोगों को दे दी।

जब गंगाधर मिश्र ने विवाह से इनकार किया था तो उन के विरोध में एक तूफान उठ खड़ा हुआ था। उस तूफान के परिणाम-स्वरूप उन के नपुंसक होने की अफ़वाह फैल गई थी। अब जब वे विवाह कर लेने के लिए तैयार हुए तो वह नपुंसकता की अफ़वाह उन का विवाह होने में बाधा बनने लगी।

गंगाधर की नपुंसकता की अफ़वाह उन की प्रस्तावित ससुराल या सगाई के गाँव तक पहुँच चुकी थी। जब गंगाधर विवाह करने से इनकार कर रहे

थे तब उन की ससुराल वाले इस बात से परेशान थे। उन्हें चिन्ता थी कि जवान लड़की को कब तक घर बैठाए रखें ? यदि वे पुरानी सगाई तोड़ कर लड़की की नयी सगाई की कोशिश करते हैं तो यह सन्देह फैल जायेगा कि लड़की में कोई ऐब होने के कारण पहली सगाई टूटी है। अब गंगाधर विवाह के लिए तैयार हो गए तो ससुराल के लोगों को गंगाधर की नपुंसकता की अफ़वाह ने चिन्तित कर दिया; "........आखिर लड़का अब तकव्याह से इन्कार क्यों करता रहा ? भगवान न करे, लड़का कहीं सचमुच ही बेकाम है तो लड़की का भाग्य जान-बूझ कर कैसे फोड़ दे ?"

अब गंगाधर के पिता विवाह के लिए जल्दी कर रहे थे और उन के समधी साइत, लगन और अपने परिवार की अनेक समस्याओं का बहाना कर टाल रहे थे। इस बीच में लड़की के परिवार की यह चेष्टा थी कि लड़के की नपुंसकता के विषय मे फैली हुई अफ़वाह की जाँच-पड़ताल कर ले। उस पर अब तक जोगीपन का खब्त क्यों सवार था ? उसे ब्रह्मचारी ही रहना है तो ब्याह क्यों कर रहा है ? वास्तविक स्थिति का पता लगाने के लिए इन लोगों ने अपने गोइन्दे छोड़े। गंगाधर के गाँव के भी दो-एक आदमियों को फोड़ कर जाँच-पड़ताल करने के लिए कहा गया। कुछ लोगों ने लड़के का डाक्टरी मुआइना करा लेने की सलाह दी! परन्तु इस मे दोनों परिवारों की बदनामी का डर था।

बहुत कोशिश करने पर भी ऊख और अरहर के खेतों में गंगाधर के कभी कोई 'रहस-लीला' करने की घटना का समाचार नहीं मिला। गंगाधर की किसी बदकारी का प्रमाण न मिलने से लड़की के परिवार के गुप्तचर प्रति क्षण ही गंगाधर पर नज़र रखते थे, उन के उठने-बैठने पर, घूमने-फिरने पर। यह बात गंगाधर के लिए संकट का कारण हो गई। देहात में शहरों की तरह परदेदार सडास और गुसलखाने होते नहीं। सुबह-शाम जब गंगाधर लोटा ले कर दिशा-फ़रागत के लिए खेतों की ओर चलते तो एक-दो आदमी उन के पीछे हो लेते, या कहीं खेत की मेंड़ पर ही पेशाब करने बैठ जाने पर कोई-न-कोई सामने से या इधर-उधर आड़ से ताक-झाँक करने लगता। ऐसी अवस्था में गंगाधर अपमानित अनुभव कर चिढ़ जाते और गाली देकर और ढेला फेंक कर उन्हें भगाने की कोशिश करते। परन्तु सत्य के जिज्ञासुओं ने अपने चर्म चक्षुओं से स्थिति का समाधान किये बिना उन का पीछा नहीं

छोड़ा। आखिर चश्मदीद गवाहों द्वारा गंगाधर की नपुंसकता की अफ़वाह गलत साबित हो जाने पर, उन का विवाह धूमधाम से हो गया।

गंगाधर का विवाह तो हो गया परन्तु गंगाधर ने गांधी जी के उपदेश के अनुसार गुलाम देश में गुलाम सन्तान पैदा न करने की प्रतिज्ञा कर ली थी। विवाह हो जाने पर भी वे गांधी जी के उपदेश के अनुसार ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करते ही रहे। जब दो वर्ष बीत गए और उन की बहू की गोद सूनी ही रही तो परिवार फिर चिन्ता में डूब गया। गंगाधर के परिवार में लड़की के बाँझ होने की और ससुराल में लड़के के वास्तव में ही नपुंसक होने की अफ़वाहें उड़ने लगीं। लड़के-लड़की पर से यह दैवी प्रकोप दूर करने के लिये दैवशक्तियों का आह्वान किया जाने लगा। गंडे-तबीज़ की व्यवस्था होने लगी।

गंगाधर की पत्नी बांझ समझी जाने की लज्जा से मरी जा रही थी। वह अपने भाग्य को कोस रही थी कि 'जाने किस डाइन ने इन का' मन मुझ से फेर लिया है जो बात ही नहीं करते?' उस ने गौरी-पूजा की। गंगाधर की माँ ने चौराहा पुजवाया और पीर की क़ब्र पर चढ़ाने के लिए चादर भेजी। कभी टोना कर के घर में चक्की के नीचे कुछ दबाया जाता। कभी कोई जादू गंगाधर के पलंग के पाये में बाँधा जाता और कभी दामन में। कभी वे अपने कपड़ों में कोई जन्तर-मंतर छिपाया हुआ देखते। कभी पंडित कोई पूजा कर जाते और कभी फकीर फूंक-मार जाते। गंगाधर यह सब देखते और इन मिथ्या विश्वासों से उन्हें चिढ़ और अपना अपमान मालूम होता।

पुराने विचार और मर्यादा के रक्षक जमींदार के परिवार में कड़े परदे की प्रथा थी। घर में जनाना और मर्दाना भाग अलग-अलग थे। दिन में गंगाधर कभी अपनी पत्नी से मिल ही नहीं सकते थे। रात में वे ब्रह्मचर्य के नियम का पालन करने के विचार से बाहर मर्दाने में ही रहते। असल बात तो यह है कि परम्परागत पर्दे की मर्यादा के अनुसार उन्होंने अपनी पत्नी का मुख भी न देखा था। वे उसे कुछ समझाते तो कैसे? मिथ्या-विश्वास के परिणाम-स्वरूप इस टोने-टोटके से ऊब कर एक दिन वे, घर के दूसरे मर्दों की तरह रात में चुपके से जनाने में गए और अँधेरे में भी परदे की मर्यादा की रक्षा करने वाली, घूंघट काढ़े अपनी पत्नी को यह समझा

दिया—"तुम्हें अपने जो वहम पूरे करने हों, कर लो ! चक्की, चूल्हा, तोरण, तीरथ, मसान, जो भी पूजना हो, पूज लो ! अपनी पूजा और टोने का प्रभाव परखने के लिये मैं तुम्हें एक वर्ष का समय देता हूँ। इस के बाद मैं बात करूँगा।"

गंगाधर अपनी बात की रक्षा के लिये अगले दिन गाँव छोड़ कर इलाहाबाद चले आए और उत्साह से कांग्रेस के काम में लग गए। घर में वर्ष भर उन की पत्नी और माँ देवताओं की शक्ति को सत्य प्रमाणित करने के लिये जादू-टोने में और भी जोर से लगी रहीं। दोनों पक्ष अपनी-अपनी प्रतिज्ञा और विश्वास पर दृढ़ थे। गंगाधर अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार, एक वर्ष बाद घर लौटे और फिर प्राकृतिक नियम के अनुसार, नियमित समय पर उन के घर सन्तान भी हो गई और उन्हें नपुंसकता के कलंक से छुट्टी मिली।

अपने दो व्रतों पर दृढ़ न रह सकने का खेद गंगाधर मिश्र के मन में बहुत दिन तक नहीं रहा। उन्होंने अपने जीवन को परिस्थितियों के अनुसार सुधारने का प्रयत्न आरम्भ किया। लक्ष्य उन के जीवन का केवल देश की सेवा ही था। सौभाग्य से उन के नौकरी न करने अथवा जेल चले जाने पर परिवार के भूखे मरने की नौबत न आ सकती थी। इसलिये वे पूरी शक्ति से देश-सेवा के ही काम में लगे थे। देश-सेवा के लिये उन्हें रहना पड़ता था इलाहाबाद में। अपने जीवन के इस कार्य को अधिक संतोषजनक बना सकने के लिये उन की इच्छा थी कि उन की पत्नी भी देहात के संकीर्ण और कुसंस्कार-पूर्ण वातावरण से छुट्टी लेकर उन के साथ इलाहाबाद में ही रहे।

इस इच्छा के लिये यथेष्ट कारण भी मौजूद थे। इलाहाबाद में स्त्रियाँ स्वतन्त्रता के आन्दोलन में आगे बढ़ कर भाग ले रही थीं। काँग्रेस के प्रमुख नेता सभामंच पर प्राय: सपत्नीक बैठते थे। कांग्रेस के आन्दोलन में पत्नी को साथ लेकर चलने वाले नेता प्रगतिशील समझे जाते थे और उन का विशेष आदर था। गंगाधर मिश्र पत्नी होते हुए कांग्रेस में सपत्नीक नेता क्यों न बनते ? इस महत्वाकांक्षा के पूर्ण होने में कांग्रेस अथवा जनता की ओर से कोई रुकावट नहीं थी। गंगाधर ने इस विषय में अपने साथियों और सहयोगियों से सलाह ली। उन्होंने उन्हें स्त्री को शहर में लाकर आधुनिक बनाने के लिये उत्साहित किया। रुकावट थी तो केवल अपनी पत्नी और परिवार की ओर

से जो परदे के रूप में कुल की मर्यादा को देश की समस्याओं और सभ्यता के आधुनिक विकास से अधिक महत्व दे रहे थे।

गंगाधर मिश्र ने अपनी सदिच्छा को पूर्ण करने के लिये मन-ही-मन यह षड़यंत्र रचा कि वे माघ-मेले के अवसर पर पत्नी को गंगा-स्नान के लिए इलाहाबाद ले आयेंगे। स्त्री को एक बार परम्परागत मर्यादा के गढ़ से निकाल लेने पर फिर वे जैसा उचित समझेंगे, करेंगे।

गंगाधर ने जब घर आकर अपनी स्त्री को 'माघी-पूर्णिमा' का स्नान कराने की इच्छा प्रकट की तो इस पर परिवार के लोगों कोई आपत्ति न हुई। बहू को स्नान करने के लिये भेजते समय गंगाधर की माँ ने अनेक आवश्यक वस्तुयें गठरी-मुठरी बाँध साथ कर दीं और देहात से एक लड़का भी काम-काज के लिये, नौकर के रूप में, साथ कर दिया।

गोद में बच्चा लिए अपनी पत्नी और नौकर के साथ गंगाधर इलाहाबाद के स्टेशन पर पहुँचे। उन के सामने समस्या यह थी कि पहले डेरा कहाँ करें। इलाहाबाद से जाते समय वे कोई प्रबन्ध कर नहीं गए थे। घोर परदे की मर्यादा के अनुसार चलने वाली स्त्री को, जिस की बोली भी कभी बाहर के किसी आदमी ने न सुनी थी, सीधे कांग्रेस के दफ्तर में -- जहाँ केवल सिर उघाड़ कर देश की सेवा करने वाली देवियों का ही आना-जाना था - लिवाए चले जाने का उन्हें साहस न हुआ। किसी मित्र या परिचित के यहाँ सहसा परिवार को ले कर पहुँच जांय, यह भी उचित न जँचा। इसलिए, स्त्री और नौकर को वेटिंग-रूम में ठहरा कर और स्वयं शहर जाकर प्रबन्ध कर लेना ही उन्होंने उचित समझा।

× × ×

कांग्रेस दफ्तर में पहुँच कर गंगाधर ने शर्माते-शर्माते अपने सहयोगियों और मित्रों के सामने अपनी समस्या रख स्थान का कोई प्रबन्ध करने के लिए अनुरोध किया। मित्रों ने विस्मय से कहा—"अरे, तो तुम भाभी को साथ क्यों नहीं लेते आए ?.........उन्हें स्टेशन पर क्यों छोड़ आए ?"

"कैसे ले आता ?"—कुछ झेंप के साथ गंगाधर ने उत्तर दिया—"वह हाथ भर का घूघट काढ़े है। यहां वह कहाँ बैठती ? ज़रूरत पड़ने पर वह किसी से एक गिलास पानी भी तो नहीं माँग सकती। पहले कभी उस ने घर की दहलीज तो क्या, ज़नाने की दहलीज भी तो नहीं लाँघी। सच मानो,

ब्याह हुए चार बरस होने को आ रहे हैं, पर हमने अभी तक उस का मुंह भी नहीं देखा।"

गंगाधर के सहयोगी कार्यकर्त्ताओं और मित्रों ने आँखों-ही-आँखों में परस्पर बातें की और उन्हें सांत्वना दी—"घबराने की क्या बात है ? सब ठीक हो जायगा। तुम रात भर के सफ़र से थके आए हो। नल पर नहाओ-धोओ। अभी वालंटियरों को भेज कर तुम्हारे परिवार को यहाँ बुलाए लेते है। सुविधा से दूसरा प्रबंध भी हो जायगा।" वैसा ही किया भी गया।

गंगाधर के काँग्रेसी मित्रों द्वारा भेजे गए दो वालंटियर स्टेशन के वेटिंग-रूम मे पहुँचे। गंगाधर की बताई हुई बिस्तरे-बक्स, नौकर और उन की स्त्री की गोद में बच्चे और दुपट्टे की पहचान से गंगाधर के परिवार को पहचान लेने में कोई कठिनाई नहीं हुई। उन्होंने नौकर को समझाया कि मिश्र जी ने हम लोगों को तुम्हें लिवा ले जाने के लिए भेजा है। वे तुम लोगों की प्रतीक्षा कर रहे है। वालंटियर मिश्र जी के परिवार को स्टेशन से लिवा ले गये।

डेढ एक घंटे के बाद काँग्रेस के दफ्तर मे चिन्ताजनक खबर पहुँची, कि वालंटियर जब स्टेशन पर पहुँचे तो गंगाधर मिश्र की स्त्री, बच्चा और नौकर वहाँ मिले ही नही। गंगाधर ने सुना, तो उन के पाँव तले से धरती खिसक गई। वे "हैं" कह कर आँखें और हाथ फैलाए रह गए।

उन्हें घबराया देख कर उन के मित्रों और सहयोगियों ने सान्त्वना दी—"यों घबराने से काम नहीं चलेगा। यह इलाहाबाद है और दिन भी मेले के हैं। यहाँ पंडे और दूसरे बदमाश जो न करें, थोड़ा। परन्तु घबराओ नहीं। आखिर हम लोग तो मदद के लिए है ही। अभी काँग्रेस के शाखा-दफ्तरों और पुलिस की चोकियों को फोन करते है। आखिर उन्हें कोई ले कहाँ जायगा ? स्टेशन पर भी चौकसी का प्रबन्ध किये देते हैं।"

गंगाधर का दिल धक-धक कर रहा था। आँखों में बार-बार आँसू उमड़ आते। वे स्त्री को आधुनिक बनाकर उस की उन्नति करने के लिए देहात से शहर लाए थे और स्टेशन पर हो उसे खो बैठे। वे अब जाकर अपने परिवार वालों को क्या मुंह दिखायेंगे ? उन्हें इस संकट में कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। उन के हाथ पैर ढीले पड़ रहे थे। परन्तु उन के मित्र और सहयोगी उन्हें सांत्वना देते हुए बड़ी तत्परता से जगह-जगह सन्देश भेज रहे थे और बार-बार

फोन उठा कर, नम्बर माँग कर, गंगाधर की पत्नी और नौकर का हुलिया बता-बता कर शीघ्र खोज करने का अनुरोध कर रहे थे। वे मिश्रजी को भी बताते जाते कि अब 'दारागंज' थाने को फोन कर दिया, अब 'मुट्ठीगंज' को अब 'कटरे' को। गंगाधर उन्हीं पर भरोसा किए हुए थे। उन्हें थानों के फोन नम्बरों का क्या पता था? बीच-बीच में चिन्ता और आशंका की बात भी चलती जा रही थी कि बदमाश और गुंडे मेले के दिनों में कैसे औरतों को उड़ा ले जाते हैं और कैसी-कैसी कठिनाइयों से वे ढूंढ़ी जाती हैं और कभी-कभी तो कुछ पता ही नहीं चलता।

गंगाधर के मित्रों ने ही यह सन्देह प्रकट किया "भाई मिश्र जी, कहीं तुम्हारे नौकर ने ही तो बदमाशी नही की? कभी-कभी घर के नोकर ही भयंकर संकट पैदा कर देते है।"

यह बात गंगाधर की समझ मे नही आ रही थी कि बारह-चौदह वर्ष का उन का देहाती नौकर, जो पहले कभी किसी शहर में नही गया, जो रेल पर भी पहिली ही बार चढ़ा है, इतना चालाक कैसे हो जायगा कि उन की स्त्री को भगा कर बेचने की हिम्मत कर लेगा।

दोपहर बीत चुकी थी। साथियों ने गंगाधर से कुछ खा-पी लेने के लिए कहा। उन के लिए हलवाई के यहाँ से पूरियाँ मंगवा दी गई परन्तु कोर उठा कर मुंह मे डालना गंगाधर के लिए सम्भव न था। वे बार-बार सोचे जा रहे थे—उस ने तो सुबह से पानी भी नहीं पिया होगा और मेरे पहले खा चुके बिना वह अन्न छुएगी भी नहीं। उस का क्या हाल होगा? उसे कोई जहाँ ले जायगा, वहां वह किसी से शिकायत भी तो नही कर सकेगी। बस, रोती ही रहेगी। वह नाम लेकर यह भी तो नहीं बता सकती कि किस की औरत है। गोद का चार महीने का बच्चा तो अभी रोना-हँसना भी नही जानता....। सामने रखे पूरी-तरकारी के दोनों को उन्होंने एक ओर को सरका दिया।

तीसरा पहर बीत गया था। जब गंगाधर के मित्रों और सहयोगियों ने देखा कि मिश्रजी सचमुच बच्चों की तरह बिलख-बिलख रोने लगे, तब कहीं फोन करने और सन्देश सुनाने के बाद उन्होंने गंगाधर को सांत्वना दी—"सुनो, सेवा समिति वाले पं० ज्वाला प्रसाद के यहाँ से फोन आया है कि सेवा समिति के वालंटियर एक भटकी हुई स्त्री को उन के यहाँ लाये हैं। उस की गोद में छोटा-सा बच्चा भी है। बेचारी जब से आई है, रो-रो कर परेशान

हुई जा रही है। हिन्दू औरत के लिये यह भी तो एक मुसीबत है कि अपने मर्द का नाम भी तो नहीं बता सकती। चलो, देख तो लो!"

उन्हें तैयार होते देख सहयोगियों और मित्रों ने स्वयं ही प्रश्न किया—"भैया सोच लो! खामखाह घबराहट में किसी पराई औरत को अपनी न कह बैठना। कहीं और मामला खड़ा न हो जाय।··· तुम अपनी औरत को पहिचानते भी हो?····कभी देखा है?" खबर सुन कर गंगाधर को कुछ उत्साह हुआ था परन्तु इस प्रश्न से उन का उत्साह भंग हो गया। पहचान वे कैसे सकेंगे? अपनी स्त्री का मुंह तो उन्होंने देखा ही न था।

सोच कर गंगाधर ने धैर्य से उत्तर दिया—"शक्ल नही पहचानेंगे, कपड़े जो पहन के आई है वह तो पहचानेंगे। अच्छा, हम उसे घूंघट में नहीं देख सकते थे उस ने तो घूंघट में से हमे देखा होगा। वह तो हमारी आवाज पहिचानेगी।"

सहयोगियों ने मुस्कराहट दबा कर स्वीकार किया—"मिश्र जी की बात ठीक ही है।" और वे उन्हें पंडित ज्वालाप्रसाद के यहाँ ले गए।

सुबह स्टेशन से लाकर वालंटियर गंगाधर मिश्र की स्त्री और बच्चे को पंडित ज्वालाप्रसाद के यहाँ छोड़ गए थे तो पंडित जी की घर की स्त्रियों ने उस के लिए नहाने-धोने और कपड़े बदलने की व्यवस्था कर सांत्वना दी थी—"मिसिरजी हमारे जाने-पहिचाने है। यह तुम्हारा अपना ही घर है। नहा-धो कर सफ़र के कपड़े बदल लो, और आराम करो। उस के लिए जनाने में सब व्यवस्था कर दी गई थी। मिश्र जी की स्त्री को कोई चिन्ता भी नहीं हुई थी। वह जानती थी कि परदे वाले घर के कायदे के अनुसार दोपहर भोजन के समय से पहले 'वे' भीतर क्या आयेंगे परन्तु जब पति दोपहर में भी न लौटे तो वह चिन्तित होने लगी।

चौथे पहर के करीब जब घबराए हुए गंगाधर दो आदमियों के साथ जनाने की ड्योढ़ी में उस के सामने आ खड़े हुए तो उस ने लम्बा घूंघट काढ़ मुंह दीवार की ओर कर लिया। मिसरानी नहा धो कर मिश्र जी के पहचाने सफर के कपड़े बदल चुकी थीं। गंगाधर सामने घूंघट में लिपटी अपनी स्त्री की ओर देख रहे थे परन्तु उसे अपनी स्त्री कहने का साहस नहीं कर पा रहे थे।

उन के सहयोगियों ने सम्बोधन किया—"तो फिर क्या कहते हो?"

"कैसे क्या कहें, भाई ?"- गंगाधर ने अधीर हो कर उत्तर दिया—"यही कुछ कह सकती हैं।"

"होती तो कहती न ?"—एक बोले

"तो फिर कहीं और चल कर ढूँढें ?"—दूसरे ने सलाह दी। सामने खड़ी स्त्री का सिर और अधिक झुक गया।

गंगाधर लौटने को हुए परन्तु साहस कर सहसा बोल उठे—"हमें पहचानती हो ?·······बोल नहीं सकतीं तो रो ही दो।"

स्त्री के आँचल से आँसू पोंछ कर रोने का संकेत करने पर गंगाधर की जान में जान आई। उन्होंने पूछा--"मुन्ना कहाँ है ?"

स्त्री ने हाथ से भीतर के दरवाजे की ओर संकेत कर दिया। कमरे से बाहर निकल गंगाधर के सहयोगियों ने बहुत गम्भीरता से समझाया—"भैया, देख कर पक्का कर लो !······· अब भी कहीं धोखा तो नहीं ?"

परन्तु उन के हंसी न सम्भाल सकने के कारण गंगाधर उन के जाल को समझ गए। दोनों हाथ से नमस्कार कर बोले—"गुरु लोगो, भर पाया तुम्हारी कृपा से। अब उस नौकर लड़के का पता और बता दो।"

नौकर का पता लगाने में कोई कठिनाई नहीं हुई।

गंगाधर मिश्र ने पत्नी का घूंघट जबर्दस्ती हटा दिया—"देखो, यह परदा कितने अनर्थ की जड़ है।" उन्होने देश के पूज्य बड़े-बड़े नेताओं के नाम बता कर समझाया--"देखो, उन लोगों की स्त्रियाँ परदा नहीं करतीं। भगवान राम तो जानकी जी को गोद में लेकर राज सभा में बैठते थे। तुम्हीं क्यों इस तरह अज्ञान में फंसी हो और हमारी हँसी कराती हो ?"

मित्रों और सहयोगियों की सहायता से गंगाधर मिश्र ने कटरे में एक मकान ले लिया। उन का इरादा वहीं बस जाने का था। पर एक महीना भी नहीं बीत पया था कि बहू के घर न लौटने से गंगाधर के पिता और माता चिन्तित हो परिस्थिति समझने के लिए इलाहाबाद आ पहुंचे। देहात में फैलती अफवाहों से उन के कुल परिवार की मर्यादा पर कलंक लग रहा था। लोग कह रहे थे कि इतने बड़े खानदानी जमींदार का पुत्र बहू को बगल में लिये इलाहाबाद के बाजारों में घूमता है।

गंगाधर के माता-पिता ने इलाहाबाद आ कर यह अनाचार अपनी आँखों से देखा तो उन के पाँव तले से धरती खिसक गई। गंगाधर ने देश के बड़े से

बड़े नेताओं के उदाहरण दे कर पिता से पर्दे के विरुद्ध तर्क करना चाहा। पुत्र का यह दुस्साहस देख कर गंगाधर के जमीदार पिता की आँखें क्रोध से लाल हो गई—"मैं तेरा बाप हूँ या तू मेरा बाप है? ....कुल कलंक बाप से जबान लड़ाता है?"

उन्होंने पुत्र के इस अनाचार के विरोध में गंगा के किनारे बैठ कर अनशन कर प्राण त्याग देने की धमकी दे दी। गंगाधर मिश्रको इस सत्याग्रह के सामने पराजय स्वीकार कर लेनी पड़ी। उन के माता-पिता बहू को साथ ले कर गाँव को लौट गए और उन्होंने अपने 'कुल की मर्यादा' को फिर घर के जनाने परदे में सुरक्षित कर दिया। बेचारे गंगाधर सपत्नीक नेता बनने के प्रयत्न में भी विफल हो, माता ठोंक कर रह गए।

डिप्टी साहब

दत्ता साहब की दृष्टि मे धन वैभव से अधिक महत्व था आदर और सम्मान का। वे विशेष परिश्रम से प्रतियोगिता परीक्षा पास करके डिप्टी के पद पर प्रतिष्ठित हुए थे। उन के जीवन के दो पहलू थे। एक पहलू था साधारण मनुष्य का, जिस में वे साधारण मनुष्य की तरह परिस्थितियो का प्रभाव अनुभव कर उन के प्रति सहानुभूति अनुभव करते थे। दूसरा था समाज के शासक का। इस पहलू से वे समाज में अनाचार, अपराध और अनैतिकता की रोक-थाम करके समाज के नियामक और रक्षक बने हुए थे। साधारणतः इन दोनों पहलुओं मे सामंजस्य बनाये रखना सुविधाजनक नहीं।

असलियत तो यह है कि लोगों पर अपराध, अनाचार और अनैतिकता के नाम पर बंधन लगाने की आवश्यकता न हो तो सरकार और सरकारी अफसरों की आवश्यकता ही क्या है ? समाज में अनाचार, अपराध, और इन्हें रोकने वाली सरकार और सरकारी अफसर सब एक ही कारण और स्त्रोत से पैदा होते हैं। मजे की बात यह है कि अनाचार और अपराध के कारण पैदा होने वाली सरकार और उस सरकार के अफसर अनाचार और अपराध से मुक्त और पवित्र होते है, या समझे जाते है। विचित्रता इस में कुछ है भी नहीं। खेत या बाग की क्यारियों में कूड़ा-करकट और मल-मूत्र ही डाला जाता है परन्तु उस में से फल-फूल उगते हैं, जिन्हें गले में पहना जाता है और मेज पर आदर से रखा जाता है। वैसे ही समाज के अनाचार, अपराध से

उपजे सरकारी अफसरों और न्यायाधीशों के भी शासन और न्याय के सिंहासनों पर सजा दिये जाने में कोई अस्वाभाविकता नहीं समझी जानी चाहिये।

जो भी हो, डिप्टी न्यायाधीश दत्ता साहब ने यह कभी अनुभव नहीं किया था कि वे समाज के अपराध, अनाचार और अनैतिकता की खाद से उपजे हुए एक सम्मानित फूल है जिन्हें न्यायधीश की कुर्सी के फूलदान में सजा दिया गया है। समाज का अंश होने के नाते उन के व्यक्तित्व में भी समाज के अनाचार, अनैतिकता और अपराध के तत्व मौजूद हो सकते है; जैसे फूलों को यदि सम्भाला न जाये तो वे तुरंत खाद बन जाते हैं। उन्हें अपराध, अनाचार और अनैतिकता के प्रति तो क्रोध था ही, इस के अतिरिक्त संकीर्णता से भी घृणा थी।

संकीर्णता का सम्बन्ध प्रायः ही होता है साधनों से। जीवन में प्राप्त हो सकने वाले साधन मनुष्य के आचार-व्यवहार पर प्रभाव डाले बिना नहीं रहते। मनुष्य की परिस्थितियों और जीवन रक्षा के लिये आवश्यक व्यवहार से ही उस के विचार बन जाते हैं। अब यही समझ लीजिये कि समाज में उदारता का आदर पाने के लिये यह आवश्यक है कि आप मित्रों को प्रायः आमन्त्रित करें। यदि आप अपने समकक्ष लोगों की तरह उदारता प्रकट नहीं कर सकते, स्पष्ट शब्द मे कहिये कि यदि आप अपने सामाजिक स्तर और दर्जे के लोगों के समान खर्च नहीं कर सकते, तो आप संकीर्णता अनुभव करने लगते है, स्वय अपनी दृष्टि में ही अपमानित या अपने आप को नीचा अनुभव करने लगते हैं। एक सरकारी अफसर के लिये तो इस प्रकार की अनुभूति बहुत ही स्वाभाविक है; क्योंकि उस का स्तर सर्वसाधारण से ऊपर अथवा असाधारण है। अपना सम्मान बनाये रखना उस के लिये आवश्यक है। उक्त कठिनाइयों से बचने के लिये डिप्टी न्यायाधीश दत्ता साहब संयम को बहुत महत्व देते थे। निस्सन्देह संयम आत्मसम्मान की रक्षा का मुख्य साधन है। इस विषय में उन के आदर्श थे अंग्रेज अफसर।

दत्ता साहब सरकारी अफसर के लिये अपमान और पतन का मूल मानते थे रिश्वत स्वीकार करना। जो अफसर अनाचारी और अपराधी के सम्मुख हाथ फैला सकता है, वह न्याय की रक्षा क्या करेगा? गूढ़ विचार से उन्होंने यह जान लिया था कि रिश्वत को फिसलती राह पर अफसर को ढकेलता है

फिजूल खर्ची करने के लिये धन का लोभ ! उस से बचने का उपाय आर्थिक संयम है। उन के आर्थिक संयम का एक रूप था हिन्दुस्तानी समान की अति-सामाजिकता या भाई चारे के व्यवहार से यथा संभव दूर रहना। उन का बंगला सिविल लाइन्स में था। वे अंग्रेज़ अफसरों की तरह अपना मासिक बजट बना कर, अंग्रेज़ अफसर के संयम और रोब से ही अपना खर्च निभाते थे। सौभाग्य से उन्हें सुशिक्षिता पत्नी मिली थी। पति-पत्नी दत्ता साहब और मिसेज—दत्ता—डिप्टी न्यायाधीश की सीमित तनख्वाह में सम्मानित पद के असीम आदर को बड़े यत्न से निभाये जा रहे थे।

सुरक्षित पति-पत्नी आधुनिक, सभ्य पारिवारिक जीवन के रहस्यों का परिचय विवाहित जीवन के सम्बन्ध मे अंग्रेजी पुस्तकें पढ़ कर पा चुके थे। इसलिये उन के परिवार पर संतान का बोझ उन के अनजाने मे 'भगवान की इच्छा' के रूप मे, नहीं आ पड़ा था। विवाहित जीवन के चार या पाँच वर्ष पति-पत्नी के सख्य और आमोद में व्यतीत हो जाने के बाद जब डिप्टी साहब और मिसेज दत्ता एक सुन्दर बच्चे के बिना अपने जीवन को अपूर्ण समझने लगे तभी एक फूल-सी सुन्दर कन्या को उन के यहां जन्म लेने का अवसर मिला। इस संतान के प्रति दत्ता साहब और मिसेज दत्ता के शौक, उत्साह और आदर का वही दरजा था जो बड़े से बड़े अंग्रेज़ अफसर के घर हो सकता था। बिल्कुल सफेद कपड़े पहिने एक सुथरी आया, विलायती ढंग का एक पलना, बढ़िया पिरेम्बुलेटर (हाथ से ढकेली जाने वाली बच्चों की गाड़ी) उन के बंगले के ग़मलों से घिरे बरामदे मे दिखाई देने लगे।

डिप्टी साहब और मिसेज दत्ता प्रायः ही संध्या समय पिरेम्बुलेटर में 'डौली' को लिटाये ठंढी सड़क पर घूमते दिखाई देते थे। डौली अभी तीसरा वर्ष भी पूरा नहीं कर पायी थी कि ठीक बड़े आदमियों के कायदे के मुताबिक डिप्टी साहब का नौकर उसे ठीक समय पर 'कन्वेट' के किंडरगार्टेन (बहुत छोटे बच्चों के स्कूल) में छोड़ आने लगा। डिप्टी साहब और मिसेज दत्ता दोनों को ही इस बात का गर्व और सन्तोष था कि वे अपनी पुत्री डौली के लिये जीवन में विकास और पूर्णता पाने के सभी अवसर देकर अपना स्नेह और कर्तव्य पूरा कर रहे हैं। पति-पत्नी प्रायः ही इस बात पर मत प्रकट करते थे कि जब तक संतान के प्रति अपना कर्तव्य पूरा का सामर्थ्य न हो, संतान उत्पन्न क्यों की जाये ? जो लोग संतान के प्रति अपने कर्तव्य की उपेक्षा

करते हैं और संतान उत्पन्न भी किये जाते हैं, उन्हें दत्ता साहब और मिसेज दत्ता क्रूर अपराधी करार देते थे।

जीवन में संतोष और पूर्णता की सीमा हम स्वयं ही निश्चित करते हैं जीवन में पूर्णता की इस सीमा के विस्तार की अचेतन, मधुर इच्छा से मुग्ध किसी एक क्षण में, जब मिसेज दत्ता अपने प्यारे जीवन-संगी के गले में बाहें डाले हुए थी, गुलाबी आँखों और संकोच से अस्पष्ट स्वर में कह बैठीं — "एक लकड़ा और...."

मिस्टर दत्ता को अपनी प्यारी पत्नी का यह प्रस्ताव अपने मन की ही बात जान पड़ी। आयोजना के अनुसार चलने वाले इस परिवार में उचित समय पर एक पुत्र ने भी जन्म ले लिया। इस नवागंतुक के आने के उत्साह ने दत्ता साहब के पारिवारिक सुख-संतोष को और भी बढ़ा दिया। दत्ता साहब और मिसेज दत्ता अपने इस संतोष को प्रकट करने के लिये प्रायः ही आपस में एक दूसरे को याद दिलाते रहे—"बस!......अब और नहीं! एक लड़का और एक लड़की......! पर्याप्त।

आप चाहे इसे समझदार आदमियों की भूल-चूक कहिये या अपनी कृपा दिखाने पर भगवान का हठ, डौली का भाई 'मधु' अभी 'किंडर-गार्टन' में जाने के लायक भी नहीं हो पाया था कि एक दिन मिसेज दत्ता ने कुछ झेंप और चिंता की मुद्रा और स्वर में पति को चिंताजनक रहस्य की सूचना दी— "सुनो तो, कुछ गड़बड़ी मालूम होती है..."

आशंका से फैले नेत्रों से पत्नी की ओर देख कर दत्ता साहब ने प्रश्न किया—"क्यों?... कैसे?...." और फिर बीते महीनों में रहस्यमय अवसरों की स्थिति का विश्लेषण कर लेने पर मामूली सी उपेक्षा के लिये दुखी हो कर दोनों को चिंता में चुप रह जाना पड़ा।

पति-पत्नी ने कई दिन तक आपस में विचार और चिंता कर अपने दोनों बच्चों और भविष्य में हो सकने वाली संतान के प्रति कर्तव्य और न्याय की धारणा से यही निश्चय किया कि उन के परिवार में और संतान के लिये स्थान नहीं है। परन्तु मामूली सी चूक के परिणाम स्वरूप प्रकृति को हस्तक्षेप का अवसर मिल गया था। अपनी संतान और अपने प्रति न्याय के अधिकार की धारणा से प्रकृति की इस ज्यादती को रोकना भी जरूरी था। यहीं डिप्टी न्यायाधीश की कानूनी न्याय की धारणा सिर उठा कर सामने खड़ी हो गयी।

घंटों मौन रह कर और कई रात विस्तर में जागते रह कर डिप्टी न्यायाधीश यह सोचते रहे कि स्वयं उन के अपने जीवन के सुख की रक्षा, जीवन में औचित्य की रक्षा, अपनी संतान के प्रति कर्तव्य के मार्ग में कानूनी न्याय का सर उठा कर खड़े हो जाना कहाँ तक उचित है ? न्यायाधीश का व्यक्तिगत विवेक और अपने जीवन के अवसर की रक्षा की प्रवृति इस बात का आग्रह कर रही थी कि उन्हें इस बात का अधिकार है कि जितना बोझ वे उठा सकते हैं, उस से अधिक बोझ अपने कंधों पर न लादा जानें दें ! परन्तु भारतीय दण्ड विधान की धारायें पुलिस की लाल पगड़ी और वर्दी पहन कर कह रही थीं कि गर्भ गिराना अपराध है....! न्यायाधीश की कर्तव्य-परायणता से ही नही बल्कि ऐसी अनैतिकता और अपराध के प्रति घृणा से भी डिप्टी साहब कितनी ही बार 'भ्रूणहत्या' (गर्भपात) के अपराधियों को कठोर सजायें दे चुके थे।

इस चिन्ता ने कुछ ही दिन में डिप्टी न्यायाधीश दत्ता की कनपटियों पर आती सफेदी के बढाने में कितनी सहायता दी, यह दत्ता साहब और मिसेज दत्ता दोनों ही जानते थे। हफ्तों तक कानूनी न्याय की धारणा को मान्यता देने का यत्न करते रहने पर भी दत्ता साहब यह स्वीकार नहीं कर सके कि उन के पारिवारिक जीवन के सामंजस्य को बरबाद कर देने का अधिकार कानून को है। उन्होंने समस्या के क्रियात्मक समाधान का उपाय सोचना आरम्भ कर दिया। यह उतना सरल न था।

डिप्टी न्यायाधीश फूहड़, कमीने लोगों की राह नहीं चल सकते थे। इस में मिसेज दत्ता के जीने-मरने की आशंका उत्पन्न हो सकती थी। ऐसे कई मुकदमों में पुलिस के गवाहों के बयान से वे कई फूहड़ तरीकों, पुराने गुड़ और विषैली जड़ी बूटियों के प्रयोग की बातें सुन चुके थे। इन फूहड़ उपायों के परिणाम स्वरूप अनेक सम्भावित माताओं के प्राण बलिदान हो जाने की घटनायें उन के सामने आ चुकी थीं। वे अपनी आदरणीय प्यारी पत्नी, अपने प्यारे बच्चों की माँ का जीवन दाँव पर लगाने के लिए तैयार नहीं थे। वे दक्ष और अनुभवी लेडी डाक्टर के सिवा किसी फूहड़ दाई के हाथों मिसेज दत्ता का जीवन सौंपने के लिए तैयार नहीं थे। हो सब कुछ सकता था, क्योंकि समाज मे होता ही है परन्तु न्यायाधीश के पद पर बैठे दत्ता साहब वह सब करने को कहने किसी डाक्टर के पास किस मुंह से कहते ?

आवश्यक था, इसीलिये उस का भी उपाय हुआ। उपाय हुआ एक अत्यन्त निकट सम्बन्धी की मार्फत। एक दक्ष और अनुभवी लेडी डाक्टर की फीस और उचित प्रबन्ध के लिये आवश्यक व्यय का अनुमान हुआ १,२०० रु०। यह अनुमान सुनकर दत्ता साहब कुछ देर दांतों से होंठ दबाये रह गये। व्यय की इस रकम के मानसिक आघात के बाद जब उन्होंने यह रकम खर्च न करने के परिणाम को सोचना आरम्भ किया—प्रसव के समय डाक्टर की फीस, नयी संतान और नयी आया के प्रति मास का खर्च और बीसों वर्ष तक तीसरी संतान की उचित शिक्षा और दीक्षा का खर्च, तो इस १,२०० रु० की रकम के आगे बिंदियों पर बिंदियां जुड़ती चली गयीं। उन के स्तर के ऊंचे वर्ग में अनायास ही उत्पन्न हो जाने वाली संतान के लिये उसी प्रकार अनायास ही स्थान नहीं बन सकता था जैसे कि निम्न वर्ग में होता है। निम्न वर्ग के परिवार की डलिया में जहाँ एक मुट्ठी बेर पड़े रहते हैं वहां दो चार बेर घट-बढ़ जाने से कोई फर्क नहीं पड़ता। परन्तु सम्मानित वर्ग का परिवार अंगूर की पिटारी की तरह है, जहां प्रत्येक अंगूर रुई मे लपेट कर अलग अलग तरतीब से रखा जाता है। स्थानाभाव के कारण उन के दब कर दागी हो जाने का भय रहता है··· आखिर दूरदर्शिता के विचार ने दत्ता साहब को परास्त कर दिया; उधार लेकर भी यह व्यय करना ही पड़ा। बड़ी सावधानी से, गोपनीय ढंग से एक अनुभवी और दक्ष लेडी डाक्टर की सर्जरी में वह काम हो जाने की योजना हो ही गयी।

इसे ग्रहों के योग या घटनाओं के षड्यन्त्र के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है कि जब डिप्टी न्यायाधीश दत्ता साहब अपने पारिवारिक जीवन के आर्थिक स्तर और औचित्य की रक्षा के लिये उक्त गोपनीय योजना में व्यस्त थे, उन्हीं दिनों उन के न्यायालय में भ्रूण-हत्या का एक और मामला पुलिस ने लाकर पेश कर दिया। यह घटना निम्न मध्यम श्रेणी के मुहल्ले में हुई थी। पुलिस ने अभियुक्ता के विरुद्ध पर्याप्त सबूत अदालत में पेश कर दिये थे। सफ़ाई के वकील की अनुपस्थिति में कोर्ट-इंस्पेक्टर अपराध को असंदिग्ध रूप से प्रमाणित करके अपराधिनी को ऐसा दंड दिये जाने का अनुरोध कर रहे थे जिस से समाज के अनाचारी लोगों को शिक्षा मिले।

अपराध के प्रमाणों के सम्बन्ध में शंका का अवसर कम ही था। पुलिस ने कूड़े के ढेर पर फेंका हुआ गर्भ पाया था। सुबह ही तहकीकात हो जाने के

कारण उस ढेर से सड़क के कुछ हिस्से पर और फिर गली में एक कच्चे टूटे-फूटे मकान तक जाते हुये खून से लथपथ जनाना पांव के निशान पाये गये थे। इन निशानों को देखने वाले चश्मदीद गवाह मौजूद थे। पुलिस ने मुस्तैदी से उसी समय उस घर की तलाशी भी ले ली थी और खून से लथपथ धोती और दूसरे कपड़े भी कब्जे में कर लिये थे।

उस अपराधिनी की जमानत देने वाला भी कोई नहीं था। अपराधिनी ने रोने के सिवा कोई और बयान नहीं दिया लेकिन मुहल्ले के गवाहों के दस्तखती बयान मौजूद थे। उस ब्राह्मणी के दुश्चरित्र होने का कारण और प्रमाण भी गवाहों ने बताये। वह आठ-दस वर्ष पूर्व पन्द्रह-सोलह वर्ष की आयु में विधवा हो गयी थी और उस के चरित्र के विषय में सन्देह के कारण मुहल्ले मे कई झगड़े हो चुके थे।

अपराध में सहयोग देने वाले एक मर्द के बिना ऐसा अपराध नहीं हो सकता था। उस अपराधी मर्द का पता लगाने का यत्न पुलिस ने न किया हो सो बात नहीं। परन्तु मर्द ऐसा अपराध करने के बाद औरत की तरह अपराध की गठरी तो साथ लिये नही फिरता और सभी अपराधी इतने निस्सहाय नहीं होते कि पुलिस के जाल को फाँद कर साफ न बच सकें।

घूंघट में मुंह छिपाये मैली धोती और चादर में शरीर को लपेटे वह औरत सिर झुकाये अदालत के कटघरे में खड़ी थी। उसे दंड दिलाने के लिए पकड़ कर लाने वाले न्याय और कानून के रक्षक, पुलिस के सिपाही, अपराधिनी के भाग जाने की आशंका के उपाय के रूप में लाल पगड़ी और वर्दी पहिने चौकसी पर उस के पीछे खड़े थे। दूसरी ओर खड़े कोर्ट-इन्सपेक्टर समाज की नैतिकता और न्याय की रक्षा की दुहाई देकर अपराधिनी के लिये मुनासिब सजा का तकाजा कर रहे थे।

मुनासिब सजा डिप्टी साहब सदा से देते ही आये थे। उन की प्रसिद्धि अपराध के प्रति उपेक्षा और दया दिखाने के लिये नहीं, कठोर दंड देने के लिये ही थी। दंड देने के लिये जो फैसला वे लिख देते, वह मानों अपराधी से व्यक्तिगत बैर के कारण ऐसा कि ऊंची अदालत में अपील होने पर रिहाई की गुंजाइश शायद ही कभी रह जाती हो। न्याय के प्रति उन की इस निष्ठा के पुरस्कार में उन का रिकार्ड बहुत अच्छा समझा जाता था और प्राय: महत्वपूर्ण मामले उन की ही अदालत में आते थे। पर उस दिन डिप्टी

न्यायाधीश जब पथराई हुई आँखों से उस अपराधिनी की ओर देख रहे थे, उन की स्मृति बार-बार अपने घर की गोपनीय योजना की ओर चली जाती थी। उन के मस्तिष्क में आशंका कौंध-कौंध जाती थी कि यदि किसी अप्रत्याशित कारण से बात खुल जाय तो········?

फटी चादर के घूंघट में छिपे उस अपराधिनी के चेहरे पर डिप्टी न्यायाधीश कुछ वैसी ही घबराहट और चिंता की कल्पना दिखाई दे रही थी जैसी उन्होंने 'कुछ गड़बड़ी' की सूचना देते समय मिसेज दत्ता के आतुर चेहरे पर देखी थी। उन्हें याद आने लगा, परिणाम से बचने के उपाय जानते हुये, साधन होते हुये भी किसी एक क्षण में चूक हो जाने के कारण परिणाम का उन के सामने आ खड़ा होना और उस अपराधिनी का उपायों से अजान साधनों से हीन और बेबस होना······· और अपराधिनी कुछ वैसी ही प्राकृतिक रूप से विकल अवस्था, जैसी अवस्था में उन्हें स्वयं भी उपाय कर लेने का धैर्य न रहा था।········यदि यह अपराधिनी सिविल-लाइन्स के किसी बंगले में रह कर एक अनुभवी और दक्ष लेडी डाक्टर की सेवा का व्यय १,२०० रु० दे सकती ?

डिप्टी न्यायाधीश सिर झुकाये थे। उन के हाथ में थमी कलम कोर्ट-इंस्पेक्टर की दलीलों को कागज पर लिखती जा रही थी परन्तु उन का मस्तिष्क तर्क कर रहा था:—कानूनी न्याय की पकड़ से अपने आर्थिक स्तर और औचित्य की रक्षा करने का अधिकार व्यक्ति को है या नहीं?···और इस उद्देश्य से किये गये अपराधों के कारण कितने अनिवार्य और स्वाभाविक हैं! पन्द्रह-सोलह वर्ष की आयु में विधवा बना दी जाने वाली युवती के लिये समाज के अनुशासन को तोड़े बिना जीवन में संतोष का कोई अवसर कहां है? समाज में कानून बनाने वाले और न्याय की रक्षा करने वाले नित्य अपनी वासना को पूर्ण कर के भी सहस्र आंखों से इस युवती के वासना को दमन न कर सकने के अपराध को खोज कर रहे थे। इस युवती को भय केवल खर्च का नहीं था···!

इस के लिये पकड़ी जाने का परिणाम था भली स्त्री के सभी अधिकारों से वंचित हो जाना!····यह अपराध करना उस के लिये अनिवार्य था क्योंकि वह भली समझी जाने का आदर खोना नहीं चाहती थी।····अवसर न होने पर वह अपने को रोक न सकी! यदि वह संतान देने वाले पुरुष के अभाव

में एक संतान को गोद में लेकर समाज में खड़ी होना चाहती तो भी उस के लिये कहां स्थान था ? भ्रूण-हत्या न करने का भी दण्ड उसे समाज से बहिष्कार के रूप में वैसे ही मिलता, जैसे कि भ्रूण-हत्या करने का दण्ड समाज उसे देना चाहता है ।

डिप्टी साहब ने फैसले की तारीख तीन दिन बाद की दी । इस बीच उन के अपने घर की गोपनीय योजना सफलतापूर्वक पूर्ण हो चुकी थी । जब भी वे इस मामले का फैसला लिखने के लिये कलम उठाते, उन का मस्तिष्क बोल उठता :—अवांछित संतान के बोझ से आत्मरक्षा का करना सामाजिक कर्तव्य है ।····विधवा को गर्भ गिराने के लिये विवश वही लोग करते हैं जिन्होंने स्त्री के गर्भवती होने के प्राकृतिक अधिकार को विधवा से छीन लिया है । भ्रूण-हत्या के आधार का दंड उस न्याय व्यवस्था को देना उचित है जो अवांछित गर्भ से मुक्ति पाने के कार्य को अपराध के रूप में करने के लिये विवश कर देती है ···। उन्हें क्रोध था पुलिस पर जो अपने प्राणों को जोखिम में डाल कर अपना सम्मान बचाने की चेष्टा करने वाली इस गरीब स्त्री को उन के सामने पकड़ कर लायी और उसे दण्ड दिये जाने का आग्रह कर रही थी । उन्हें इस स्त्री का अपराध यह जान पड़ता था कि वह सुशिक्षित लोगों की तरह गर्भ से बचने के रहस्यों को नहीं जानती थी और चूक हो जाने पर परिणाम से बचने के लिये उस के पास १,२०० रुपये नही थे । वह स्त्री उन्हें उस कतार बछिया की भांति जान पड़ती थी जो कसाई की छुरी से बचने के लिये भाग निकली हो और पुलिस उस आदमी की तरह जो उस बछिया को घेर कर फिर कसाई के सामने ले आया हो ; परन्तु समाज की मान्यताओं के विरुद्ध ऐसी बातें अदालत के फैसले मे नहीं लिखी जा सकती थीं ।

फैसले की तारीख के दिन अपराधिनी को फिर डिप्टी साहब के सामने पेश किया गया । उस की ओर देखे बिना ही सिर झुका कर (मानों उस की ओर उन्हें संकोच अनुभव हो रहा हो) उन्होंने हुक्म दिया:—"तुमको बरी किया ।"

कोर्ट-इन्सपेक्टर की ओर दृष्टि जाते ही डिप्टी न्यायाधीश के माथे पर बल पड़ गये । मुख से कुछ कहे बिना मामले का लिखा हुआ फैसला उन्होंने उस की ओर फेंक दिया । पुलिस और कोर्ट-इन्सपेक्टर इस औरत को बरी होते देख विस्मय से मुख खोले रह गये ।

अभियुक्त को बरी कर देने का कारण डिप्टी साहब ने फैसले में लिखा था:—"सुबूत की कमी"। पुलिस की धांधली की चर्चा करते हुये उन्होंने लिखा था:—"काल्पनिक प्रमाणों के आधार पर किसी असहाय स्त्री पर घृणित अपराध का आरोप कर देना पुलिस के लिये प्रशंसा योग्य नहीं। यदि पुलिस को अभियुक्त के अपराधिनी होने का सन्देह था तो अदालत को कोई कारण इस बात का नहीं दिखाई देता कि इसे हिरासत में लेने के बाद इस का डाक्टरी मुआइना तुरन्त करा कर सार्टिफिकेट क्यों नहीं लिया गया ? पुलिस ने कूड़े के ढेर पर फेंका गया गर्भ मिलने की जगह से स्त्री के घर तक पाये गये खून से लथपथ पाँव के चिह्नों को तो इस स्त्री के अपराध का प्रमाण मान लिया, परन्तु अदालत के सम्मुख इस बात का कोई प्रमाण नहीं दिया कि गली में खून से लथपथ पांव के चिह्नों और इस स्त्री के पांवों में क्या समता थी ? इस स्त्री के घर मे खून से लथपथ कपड़ों का पाया जाना इस बात का निर्विवाद प्रमाण नहीं मान लिया जा सकता कि वे कपड़े इसी स्त्री की सम्पत्ति थे। उस बड़े और कच्चे मकान की कोठरियों में ऐसे कई गरीब परिवार रहते हैं....।

पुलिस ने यह बात भी स्पष्ट नहीं की है कि उस मकान से बाहर जाने का कोई और दरवाजा नहीं है। यदि पुलिस ने अपराध की खोज करने में मुस्तैदी दिखायी होती तो इस अपराध के सहयोगी मर्द का पता लगाने में भी विशेष कठिनाई नही होनी चाहिये थी। स्त्री के चरित्र के सम्बन्ध में सुनिश्चित प्रमाण दिये बिना उस पर लांछन लगाना, इस बात का संदेह पैदा करता है कि मुहल्ले के कुछ दुश्चरित्र लोगों की नजर इस युवा स्त्री पर रही होगी। अपने प्रयत्नों में असफल रहने के कारण ऐसे ही लोगों ने इस गरीब स्त्री के विरुद्ध किसी दूसरे के अपराध का आरोप किया है और वास्तविक अपराधी कानून की पकड़ के बाहर चैन कर रहा है....।"

× × ×

अपनी उस गोपनीय परिस्थिति में इस घटना का प्रभाव डिप्टी न्यायाधीश साहब के मस्तिष्क पर कुछ ऐसा पड़ा कि पुलिस द्वारा पेश किये गये मामलों में उन्हें प्राय: ही पुलिस की ज्यादती दिखायी देने लगी। अपराधों के सम्बन्ध में उन की धारणा ने कुछ दूसरा ही रूप ले लिया, जिस का अर्थ था जीवन की भूख और मांग के लिये अवसरहीन, साधनहीन लोगों का प्रयत्न ! उन्हें जान

पड़ने लगा कि समाज का अनुशासन और कानून केवल साधनहीन और अवसर-हीन लोगों को संतोष पाने के प्रयत्न से विवश रखने के लिये ही है और पुलिस समाज के इस अनुशासन का क्रूर और तर्कहीन हथियार मात्र है। डिप्टी साहब की यह मनोवृत्ति बढ़ती ही गयी, यहाँ तक कि १९४२-४३ में जब पुलिस और सब अपराधों की उपेक्षा कर अदालतों में केवल राजनीतिक विद्रोह के अपराधियों को ही घसीटे ला रही थी उस समय भी डिप्टी साहब को इन अपराधियों के काम जीवन के अवसर की मांग का क्रूर दमन ही जान पड़ रहे थे। डिप्टी न्यायाधीश आँख मूंद कर अन्याय का समर्थन करने के लिये तैयार नहीं हो सके।

१९४४ में डिप्टी साहब के 'एफिशियंसी बार' लाँघ कर न्यायाधीश के पद के दायरे में कदम रखने का समय आया। जीवन के ऊँचे स्तर में कदम रखने की प्रतीक्षा वे उमंग से कर रहे थे और डाक में प्रतिदिन 'प्रोमोशन' (उन्नति) का आर्डर खोज रहे थे। तब एक दिन उन के भाग्य का निपटारा करने वाला सरकारी आज्ञा पत्र आया। इस पत्र का आशय था-- गत वर्षों में उन का व्यवहार शासन के काम में सहयोग की अपेक्षा अड़चन डालने का ही रहा है, अतः अगले ग्रेड में उन की उन्नति के प्रश्न पर अभी कोई विचार नहीं किया जा सकता। आर्डर पढ़ कर डिप्टी साहब को ऐसा जान पड़ा कि उन की कुर्सी के नीचे धरती फट गयी है और वे उस में समाये जा रहे हैं और फिर क्रोध से उन का माथा तमतमा उठा—'यह है न्याय ?'

मन जरा ठिकाने आने पर वे शासन के प्रबंध में अपनी अयोग्यता की बात सोचने लगे :— शासन का अर्थ क्या यही नहीं कि समाज में जिन लोगों ने जीवन के साधन समेट लिये हैं, उन के लिये ही जीवन के अवसर की रक्षा की जाय और जो लोग जीवन के साधन और अवसर न होते हुये भी जीवन मे भूख अनुभव करते है और संतोष पाना चाहते हैं उन्हें संतोष पाने वालों की परिधि के भीतर घुसने से रोका जाय ? पुलिस इसी परिधि की पहरेदार है। न्यायाधीश का काम है इन पहरेदारों के काम पर औचित्य की मुहर लगाना। समाज में मनुष्य को उचित और अनुचित सभी कुछ करने का अधिकार है यदि उस के पास पर्याप्त साधन हों। शासक और न्यायाधीश इसी बात का वेतन पाते हैं कि वह साधन सम्पन्नों के अधिकारों पर औचित्य की और साधनहीनो के प्रयत्नों पर अपराध की मुहर लगाये। साधन सम्पन्नों

से वेतन पाकर साधनहीनों के प्रति सहानुभूति दिखाना, शासन के धर्म के प्रति अयोग्यता और गद्दारी नहीं तो क्या है ? जो न्यायाधीश और शासक आँख मूंद कर शासन के इस धर्म के प्रति भक्ति दिखाने के लिये तैयार नहीं, वह सफल और योग्य शासक और न्यायाधीश कैसे हो सकता है ? साधन सम्पन्नों से रोटी पाकर साधनहीनों से सहानुभूति दिखाना क्या धर्म है ?

जीत की हार

"वकालत के काम में न्याय, अन्याय से उतना मतलब नहीं रहता जितना कि कानूनी पैतरे द्वारा हार-जीत से !" वकील साहब विश्राम के लिये कुर्सी पर पसरते हुए बोले—"परन्तु जब मुकद्दमा जीत लेने पर मन हार मान जाये, गर्दन अपनी आँखों में ही झुक जाती है। इच्छा होती है कि पायी हुई फीस को ठोकर मार कर रौद दे।"—वकील साहब ने गर्दन को कुर्सी की पीठ पीछे झटकाया मानों ग्लानि से झुक गयी गर्दन सीधी करने के लिए मस्तिष्क पर लदे बोझ को गिरा देना चाहते है। फिर मेज पर कोहनी का सहारा ले कर हथेली पर कनपटी टिका सुनाने लगे। अदालती अन्दाज़ में कही गयी पूरी बात का मतलब था :—

वह लड़का, लड़का क्या अच्छा खासा नौजवान—और फिर अठारह-बीस बरस का आदमी बुद्धि से लड़का ही तो होता है—तिलोकसिंह 'बडोरी' के हाईस्कूल में मैट्रिक मे पढ़ रहा था। बडोरी अलमोड़ा जिले मे बागेश्वर से आगे 'बेरीनाग' की सड़क पर बहुत छोटी सी बस्ती है, पर हाईस्कूल भी है। सड़क के दोनों ओर प्रायः आमने-सामने दस-पन्द्रह दुकानें हैं। पहाड़ी ढंग की दुकानों मे छतें ढालू होने के कारण भीतर काठ की पड़छत्ती डाल लेने से ऊपर रहने के लिए एक मंजिल आप ही निकल आती है। दुकानों में ऊपर और पिछवाड़े कोठड़ी में दुकानदार का घर हो जाता है। दो-तीन बजाजी की दुकानें, तीन-चार परचून, नमक, तेल, तम्बाकू की, जिन में किसानों के हल के

लिये लोहे से लेकर दवा दारू तक मिल सकती है, दो-तीन बिसाती की, तीन-चार दर्जी, मोची और लुहार-उहार की। चाय और मिठाई-नमकीन की दुकानें तो पहाड़ों में सड़क किनारे प्रायः रहती ही है। दो-ढ़ाई बरस से पांच-सात पंजाबी शरणार्थी आ बसे है तो कुछ रंग-रौनक बढ़ गयी है। कभी-कभी हरी पहाड़ियों पर स्वच्छ नीले आकाश के नीचे खड़े चीड़ के वृक्ष भी ग्रामोफोन के रिकार्डो और बैट्री के रेडियो से "लारी लप्पा……" और "लाल दुपट्टा मलमल की …" की तानें भी सुन पाते है।

अलमोड़ा के देहात मे मुसलमानों की संख्या रुपये में पैसा भर भी नही है। जो है, प्राय. दर्जी, मिस्त्री, धुनखे और नगारची का काम करते है और ऐसी छोटी-छोटी बस्तियों के बाजारों मे सिमटे रहते है। ब्राह्मण, राजपूत जैसे शिल्पकारों (अछूतो) के हाथ का पानी नही पीते; वैसा ही परहेज इन लोगों से भी है; बल्कि कुछ कम ही समझिये क्योंकि उठना-बैठना तो इन लोगों से बराबरी का है। ये कसम भी खाते है तो देवी-देवता की। न बुर्का-पर्दा, न कोई रिवाज का दूसरा भेद! कभी-कभात कोई औरत धोती की जगह सुथना पहन ले तो पहचान हो जाती है।

पहाड़ मे देश के व्यवसायिक नगरों की सी समृद्धि नहीं है परन्तु किसानों की जमीन अपनी होने के कारण पूरब के देहातो जैसी गरीबी भी नहीं। निराशा से लोगों का मन मर नही गया है। पढ़ने और उन्नति का साहस अभी बाकी है। 'बडोरी' के हाईस्कूल मे बहुत से लड़के सामल (आटा-चावल) घर से बांध लाते है और अपना रोटी भात अपने हाथों कर लेते है। जो अच्छे खाते-पीते घर के है, बोर्डिंग में रहते है। तिलोकसिंह 'बारिया' के थोकदार (नम्बरदार) का एकलौता लड़का है और घर का अच्छा पोढ़ा। वह बोर्डिंग मे ही रहता।

स्कूल और बोर्डिंग बस्ती से कुछ हटकर है परन्तु लड़के शाम के समय चाय-सिगरेट के लिए इन दुकानों पर उठ-बैठ कर, सड़क पर से गुजरते मुसाफिरों को देख कर या दुकानों के ऊपर गृहस्थियों की खिड़कियों में ताक-झांक चुहल कर दिल बहलाते हैं। मोतीराम शरणार्थी के रेडियो पर गाना और खबरें भी सुनते हैं। तिलोकसिंह एक तो थोकदार का लड़का दूसरे इस उम्र में हाथ-पांव चलने को यों ही बेचैन रहते है। वह प्रायः तीन-चार साथियों से घिरा हुआ, कलगीदार मुर्गे की तरह गर्दन उठाये, इधर-उधर

झांकता चलता था। उस के चाय पीने पर साथी भी साथ पीते। वह सिगरेट की डिबिया खरीदता तो उसी समय सिगरेट बांट कर खाली डिबिया को फुटबाल की तरह ठोकर से उछाल देता। उस के साथी खुशामद करते—"…… थोकदार जिस लौंडियां पर नज़र डाल दे, बच के नहीं जा सकती।" तिलोकसिंह दोनों हाथों से कमर पर जोर दे, गर्दन टेढ़ी कर, आंखों की पुतलियां दांये कोनों में और सिगरेट को होठों के बायें कोने में थाम कर उत्तर देता:—"हां तो फिर क्या कहते हो ?…दबाव है किसी का ?"

दर्जी बशीर की बुढ़ापे की शादी की एकमात्र लड़की 'नाजू' उम्र को आ रही थी। रंग गोरा और आंखें बड़ी-बड़ी। 'मडुए' की काली रोटी, 'सिशौरा' (बिच्छू बूटी) का साग और मोटा लाल चावल खा कर भी जाने कैसे उस के शरीर पर पकी खुबानी की ललाई और दूध की चिकनाई छाये जा रही थी। छरहरा शरीर अभी पूरा नहीं गदराया था पर छातियों पर उभार आ गया था, इतना कि दौड़ने-भागने में संकोच होने लगा। बचपन में बस्ती के जिन लौंडों के साथ झोंटा खोले खेलती फिरती थी और जिन लोगों की गोद में बड़ी हुई थी अब, उन्हीं से शरमाने लगी। बशीर और नजमा की मां दोनों ही लड़की के बरसात में, कद्दू की सहसा लपक जाने वाली बेल की तरह बढ जाने से चिन्तित थे। लडकी मां से भी दो उंगल ऊंचा सिर उठा रही थी। बशीर को गरुड़, बेरीनाग, बागेश्वर, सोमेश्वर या अलमोड़ा जाने का कोई मौका मिलता तो वह लड़की के लिये लड़का ढूंढ पाता परन्तु फुर्सत ही नहीं मिल रही थी। लड़की का निकाह करा देने के लिये दो-चार कपड़े, वर्तन भांड़े की भी ज़रूरत थी ही। अभी मशीन के दामों का कर्ज पूरा नहीं हो पाया था। गल्ला रुपये का डेढ़-दो सेर मुश्किल से मिल रहा था। सिलाई के दाम बढ़ाने को कोई तैयार नहीं था। एक दिन की भी मजदूरी छोड़ दे तो खाये क्या ? बशीर, नाजू की मां और नाजू सभी मिल कर काम करते थे, तब कहीं कुछ बन पाता था। बशीर कपड़े काट-काट कर देता जाता। पीछे की कोठरी में बैठी मां और बेटी कच्चा कर देतीं या काज-बटन लगाती रहतीं। बशीर मशीन चलाता रहता।

नाजू के कारण स्कूल के लौंडे मसूद और लक्खीराम की दुकानें छोड़ कर सिलाई के लिये बशीर के यहां ही घिरने लगे। बशीर मियां को अपने कौशल पर अभिमान होने लगा। वह इसे 'अल्ला' की बरकत समझ कर जी-जान से

मेहनत करने लगे। लेकिन नाजू खूब समझती थी। मन में गुदगुदी भी उठती और कभी लौंडे ज्यादा बेशर्मी से घूरने लगते, पिछवाड़े के जंगल से ईंधन लाते या इधर-उधर भटक गई मुर्गियों को ढूंढ़ते और 'गूल' से पानी का घड़ा लाते समय बोली-ठोली से इशारेबाजी करने लगते तो झुंझलाहट भी उठती। यहां तक कि कभी-कभी सम्मान की रक्षा के लिये गाली दे देने, पत्थर मारने या बाप से शिकायत कर देने की धमकी भी देनी पड़ जाती।

तिलोकसिंह इसी चक्कर में दो तीन कमीज, पाजामे और एक कोट बशीर से सिला चुका था। वह कोट की बांहों या कालर का ऐब ठीक कराने के बहाने बार-बार दुकान पर जा पहुँचता। कभी अंडा खरीदने के बहाने पिछवाड़े पुकार लगा देता। नाजू सब समझती थी। यों तिलोकसिंह उसे भी अच्छा लगता था उस का रोबदाब था। पर वह इसे खिझाने के लिये या तो छिप जाती या आंखे नीची कर लेती। तिलोकसिंह और दूसरे कई लौंडों के के नाम वह जान गयी थी या लौंडों ने ही उस के सामने एक दूसरे को पुकार-पुकार कर अपने नाम सुना दिये थे।

एतवार के दिन तिलोकसिंह तीन-चार लड़कों को लिये सुवह ही चाय पीने दुकानों पर गया था। नाजू सड़क पार लक्खीसाह के यहां से बड़ी सी हांड़ी में छाछ लिये, दोनों हाथों मे हांड़ी सम्भाले सड़क पर लौट रही थी। तिलोकसिंह ने कनखियों से उन की ओर देख कर कहा—"···छांछ के लिये इतनी तकलीफ; कहो दूध से नहला दें ?"

"अपनी ईजा (मां) को नहला।"—क्रोध में पीछे घूम कर नाजू ने अंगूठा दिखा कर उत्तर दिया और झट अपनी दुकान में जा घुसी।

साथियों के सामने तिलोकसिंह की हेठी हो गयी। वह कंधे ऐंठा, हाथ मे न आ सकने योग्य मूंछों को सहला कर अपने साथियों को सुनाते हुए बोला—"अच्छा हरामजादी को देखूंगा।····"

तिलोकसिंह अवसर की खोज में रहने लगा। उसे मालूम था कि तीसरे पहर कभी नाजू और कभी उस की माँ बाजार के पिछवाड़े के जंगल में ईंधन के लिये जाती हैं। लेकिन स्त्रियाँ अकेली नहीं प्रायः दो-दो, चार-चार साथ जाती है। वह प्रतीक्षा में ऊबता जा रहा था। एक दिन उस ने पढ़ाई के समय टेकरी पर बने स्कूल की खिड़की से देखा कि नाजू की माँ दो पड़ोसनों के साथ ईंधन के लिये जँगल की ओर जा रही है। तिलोकसिंह स्कूल से उठ

आया और बाजार की बस्ती के पिछवाड़े साग-सब्जी उगाने के लिये बनाये छोटे-छोटे खेतों की बाड़ों के पीछे दुबकता हुआ बशीर की दुकान के पिछवाड़े के दरवाजे पर जा पहुंचा। नाजू की मां आंगन के दरवाजे के किवाड़ उड़क गयी थी। किवाड़ हाथ के दबाव से खुल गये। नाजू पिछवाड़े की कोठड़ी मे, रोशनी के लिए आंगन की ओर के दरवाजे में बैठी, सिर झुकाये गुन-गुनाती हुई कपड़ों में काज बना रही थी। दुकान से बशीर की मशीन की घरघराहट सुनाई दे रही थी परन्तु दरवाज़े आमने-सामने न होने के कारण दुकान ओझल थी।

तिलोकसिंह पंजों के बल आंगन पार कर गया। परछाई पड़ने पर नाजू ने आँखें उठाकर देखा तो चेहरा फक... ! तिलोकसिंह पंजों के बल उस के सामने बैठ कर दबे स्वर में बोला—"अब बोल !...... और दिखा अंगूठा।"

नाजू ने गहरा साँस खींचा और पीछे सरकते हुए, धीमे स्वर में धमकाया "बाप को पुकारती हूँ।"

"पुकार !"—ढिठाई से तिलोकसिंह ने उत्तर दिया, "कहूंगा, इसी ने पिछवाड़े से पुकारा था, "आ आ, ईजा नहीं है।"

"तेरे पांव पड़ती हूँ, यहां से जा"—नाजू हाथ जोड़ कर गिड़गिड़ाई।

"क्यों !......और सब से तो खूब हंसती, बोलती है। हमने कौन मरा कुत्ता घसीटा है ?......हमारी क्या जात नीची है ? हम तो तेरे लिए हथेली पर जान लिए फिरते हैं।" तिलोकसिंह ने मुस्कराकर नाजू की कलाई पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाया।

"झूठ"—पीछे सरक कर नाजू ने विरोध किया, "मै कब किस से हंसी, बोली ?"

"उस दिन गाली क्यों दी थी ?"

"हाय तो तू सब के सामने..."—वह चुप रह गयी।

"अच्छा तो हमारी तेरी रही किसी को खबर नहीं होने की।"—तिलोक ने उस की आँखों मे देखा।

"तेरे पाँव पड़ती हूं, यहां से जा"—सिमटते हुए नाजू फिर गिड़गिड़ाई, "बाप सुन लेगा, कोई आ जायेगा !"

"अच्छा तो फिर बाहर मिलना। कल दिये जले बाद आना खड्ड में, भूत-वाले पीपल के नीचे।"

"हाय अब जा।"—नाजू ने फिर हाथ जोड़े।

"अभी जा" नाजू ने पीछे सरकते हुए दोहराया। तिलोकसिंह का शरीर सनसना रहा था, "अच्छा तो कौल कर। हाथ मिला।"

नाजू ने डरते डरते हाथ बढ़ा दिया। तिलोक ने उसे हाथ से खींच लिया और उस के सिर पीछे हटाते-हटाते उस पर झुक कर अपने होठों से उस के होठों को रगड़ कर फुसफुसाया—"अब तू हमारी हो गयी, याद रहे!"—और पंजों के बल बाहर निकल गया।

तिलोकसिंह चला गया तो नाजू की जान में जान आयी, कंपकंपी बंद हुई। निर्भय होने के लिये उठकर आंगन के किवाड़ों में उड़का लगा दिया। सोचने लगी—हाय, यह क्या हो गया? कपड़ा और सुई अब भी हाथ में ही थे परन्तु आँखें तर हो जाने और सिर घूम जाने के कारण कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा था। होठों पर अब भी हल्की-हल्की मिर्च सी लग रही थी—हाय, कोई देख लेता तो……

"बेटी काज बन गए तो दे जा!"—नाजू ने सुना और सूखे गले से घूंट भर उत्तर दिया—"कर रही हूं अब्बा!" कह तो दिया पर कर नहीं पा रही थी। बड़ी कठिनाई से काज समाप्त कर बाप के पास ले गयी और बोली—"सिर मे बड़े जोर का दरद हो रहा है अब्वा। आँख नहीं टिक पा रही इस बखत।"

वह खाट पर जा लेटी और आँखें मूंद कर सोचने लगी—हाय, कोई देख लेता तो····! फिर ख्याल आया—दूसरे लौडे तो टुच्चे हैं। इस का कलेजा तो है। वह बहुत देर तक सोचती और कल्पना करती रही और उसे जान पड़ा— अब उस की अपनी एक बात है, जिसे कोई नही जानता। कानों में बराबार गूंज रहा था—"हम तो तेरे लिये हथेली पर जान लिए फिरते हैं!" उस ने अपने होठों पर जीभ लगाकर उन्हें चखा और स्वयं शर्मा गयी। याद आया—"कि अब तू हमारी हो गयी, याद रहे!"

नाजू बाप और मां की आँखों से कतरा रही थी जैसे वे उस की उभरी-उभरी छातियों के नीचे छिपी बात भाँप लेंगे। उस रात वह माँ की बगल लेटी तो उसे मां और अपने बीच एक खड्ड सी बहती जान पड़ रही थी, जैसे उस का अपना जीवन अब अलग बन गया हो। मन चाहता था, कहीं अलग सोये। माँ से क्यों चिपटी रहे? बड़ी भारी चिन्ता तो थी कि कल का वायदा

कैसे पूरेगी ? भूत वाले पीपल के नीचे डर के मारे कोई आयगा तो नहीं सोचा''''अगर भूत, ही आ जाय ?''''हाय, क्यों आयगा भूत ? शाम को थोड़ी देर के लिय घर से टहलने के उस ने कई बहाने सोच डाले ।

अगले दिन नाजू की मा शाम से ही उबैदुल्ला बजाज के यहां गई हुई थी । उबैद की बहू के बाल-बच्चा हुआ था । बशीर मियाँ सूरज छिप जाने पर आंखों से मजबूर हो कर काम नही कर पाते थे । इसलिये दुअन्नी भर अफीम खाकर अल्ला को याद करते-करते औंघाते रहते । उस समय चाहते थे कि उन्हें कोई न पुकारे । अंधेरा घना हुआ तो नाजू ने आंचल दांत तले दबाया और खड्ड की ओर चल दी ।

तिलोकसिंह बहुत उतावला हो रहा था । कभी नाजू को बाहों मे दबाना चाहता कभी उस गाद मे ले लेना चाहता । इधर-उधर हाथ चला रहा था । नाजू लड़खड़ाते हाथों से उसे बरज रही थी --"लोगों को पता चल जायगा तो मेरा मूड़ काट लेंगे ।"

"कैसे पता चल जायगा ?"

"कुछ हो गया तो ?" - उस ने अंधेरे मे तिलोकसिंह से आंखे मिलाते हुए पूछा ।

"क्या कहती है"— उसे कंधों से थाम सामने कर तिलोकसिंह ने उत्तर किया "तुझे कोई कुछ कहेगा तो पहले मेरा मूंड़ गिरेगा ।'''मैं तुझे देस ले जाऊंगा । यहां क्या रखा है !"

"सच कहता है ?"—नाजू की आँखें चमक उठीं

"नहीं तो क्या ?"

"देओं की कसम ?"

"देओं की कसम !'''तू अभी मुझे नही चाहती ?"

"चाहती नही तो क्या ?"—नाजू उस के कंधे पर लुढ़कती हुई बोली, "मुझे देस ले चल ।"

इस के बाद तिलोकसिंह लौडों के साथ रहने पर नाजू से ताक झाँक न करता । अकेला सामने चाय की दुकान पर आकर बैठता तो ऊपर खिड़की में बैठी नाजू से आँखे मिलाता रहता । नाजू प्यार का इशारा कर मुस्करा भी देती । नाजू अंधेरा होने पर उबैदुल्ला के यहाँ से कोई चीज लेकर या देकर लौटती तो बहुत धीमे-धीमे, ठमकती हुई कि बाजार में कोई है या नहीं, है तो कौन ?

तिलोकसिंह भी समझ गया था। एक दिन ऐसे ही पास से गुजरते-गुजरते बात हुई। तिलोकसिंह ने कहा—"आज खड्ड में आना।"

"आज नहीं, फिर"—नज्मा धीमे से कह गयी।

दूसरी बार भी ऐसा ही हुआ। तिलोकसिंह को जान पड़ा कि धोखा दे रही है। अच्छा !—उस ने सोचा।

महीना भी नहीं बीता था कि···

× × ×

चौथा पहर ढल रहा था। लड़के स्कूल से बोर्डिंग में लौट कर आराम या हंसी मजाक कर रहे थे। बच्चीसिंह ताश की गड्डी फरफराता हुआ कुन्दन और प्यारे को साथ लिये तिलोकसिंह को खेल की चुनौती दे रहा था।

"साले, पहले हारा हुआ चुका ले तो खेल का नाम लेना ! चूतड़ों में गूं नहीं, कौओं को न्योता दे रहे है।"—तिलोकसिंह ने बच्चीसिंह की चुनौती का उत्तर दिया ही था कि सबका ध्यान गया टेकरी पर बोर्डिंग की ओर तेजी से चढते हुए शरणार्थी बजाज मोतीराम और नन्दलाल की ओर।

मोतीराम हाथ में अखबार लिये था। समीप आकर वह क्रोध और उत्तेजना में गाली देकर पुकार उठा—"डूब मरो तुम हिन्दुओ ! पंजाब में इतना कुछ हो गया। तुम लोगों की·······मे खाज भी नहीं हुई। सालो, डूब मरो। और हौंसले बढ़ाओ इन·······मुसलियों के। अब और क्या चाहिये ? तुम्हारे पडोस बागेश्वर में ही उस हरामी मादर··· कादिर ने ब्राह्मणी भी खराब कर दिया। बंगाल में रोज हजारों हिन्दू कट रहे हैं। देख लो यह अखबार। तुम इन मादर·······सांपों को खूब दूध पिला-पिलाकर पालो और यह तुम्हारी बहू-बेटियों को खराब करे। देखते क्या हो, पंजाब और बंगाल से निकाले गये अभी यहाँ से भी यह लोग तुम्हारे चूतड़ों पर लात मार कर तुम्हें निकालेंगे। तुम कान में तेल डाले पड़े रहो···"

सब लड़के सिमिट आये। प्यारे मोतीराम के हाथ से अखबार लेकर सब को सुनाने लगा—ढाका से हजारों हिन्दू हाय-हाय करते पश्चिम बंगाल की ओर आ रहे हैं। उन का सब माल-मता और जवान लड़कियाँ और स्त्रियां छीन ली गयीं।" जवान लड़कियों के साथ दस-दस आदमियों के बलात्कार करने और बूढ़ियों के स्तन काट लेने और नीचे से लेकर ऊपर तक पेट फाड़ देने की खबरें थीं।

नन्दलाल ने आँखों से चिनगारियाँ बरसाते हुए बताया कि पंजाब के गुजरात और वजीराबाद शहरों में हिन्दुओं के हाथ-पाँव बांध-कर उन के सामने उन की स्त्रियों पर बलात्कार किया गया। उस समय किसी बहन''''''' माँ के लाल ने ठांक से बदला ले लिया होता तो आज यह फिर क्यों होता ? लेकिन हिन्दुओं की तो कौम ही''''''' है, बुजदिल है। यह साले कल मरते हों तो इन का आज मर जाना अच्छा''''''''

"बहन'''''' ठाकुरों, राजपूतो के लौडे हो !"— मोतीराम ने घृणा के स्वर मे ललकारा -"मर जाओ डूब कर अपने ही पेशाब मे ! हम लोगों ने पंजाब मे एक मुसले को नही छोड़ा। हमारी तो यह कांग्रेसी सरकार दुश्मन है। यह हमें न रोक लेती ता पेशावर तक बहन''''''''मुसलमानों का तुखम मिटा देते। तुम यहाँ घाघरिया और चूड़ियाँ पहन लो ! पाकिस्तान मे हिन्दू नहीं रह सकता तो हिन्दुस्तान में मुसल्टे क्यों रहें ? वो बहन'''''' अपने यहाँ हिन्दू को दुश्मन मान कर मिटाये दे रहे है और तुम इन साँपों को आस्तीन मे रख कर पुचकारो ! होने तो लगा अब तुम्हारे भी घर मे ! देख लो हो तो गया बागेश्वर में, देख लो न जा कर ? जब तक एक-एक हिन्दू की जान और हिन्दू औरत की इज्जत का बदला नहीं लोगे तुम्हारा बीज नाश हो जायेगा। देखते क्या हो ? क्यों थोकदार !" उस ने तिलोकसिंह को ललकारा और फिर बच्चीसिंह की ओर देखा—"क्यों ठाकुर ?"

"इन बहन''' '''मुशलियों की माँ''''''' !" बच्चीसिंह ने ताश की गड्डी फर्श पर पटक दी और अपनी खाट के पास कोने में रखी लाठी की ओर लपका सभी लड़के आपे से बाहर हो गये। तिलोकसिंह ने भी एक डंडा उठा लिया। जिस के हाथ जो आया लेकर सब लड़के मोतीराम और नन्दलाल के साथ टेकरी से ऐसे दौड़ते हुए उतरे जैसे पत्थरों का ढेर ढलवान पर से लुढ़क पड़ा हो।

बाजार मे पहुंच कर उन लोगों के हाथ मे खुखरी, बल्लम, तलवारे और छुरे भी आ गये। बाजार के हिन्दुओं मे ढाका और बागेश्वर की अफवाह से पहले ही उत्तेजना फैली हुई थी। उन के साथ क्रोध से उन्मत्त बीस-पच्चीस हिन्दू और भी हो गये। नारे लगने लगे—"मारो साले''''''मुशलियों को !" सब से पहले नन्दलाल के प्रतिद्वन्दी उबैदुल्ला बजाज की दुकान और घर था। बच्चासिंह ने जाते ही एक बल्लम उस की पसलियों से पार कर दिया।

तिलोकसिंह भी डंडा फेंक किसी के हाथ से तलवार ले चुका था। उस ने चिल्ला कर भागते उबेद के जवान लड़के अकबर के पेट में तलवार भोंक दी "मारो साले मादर........मुशलियों को" शोर मच गया।

भीड़ उबेद के घर के भीतर धंस गयी। पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान में हिन्दू स्त्रियों के साथ किये गये बलात्कार और बीभत्स अत्याचार के वर्णन उत्तेजित भीड़ की कल्पना को पागल किये हुए थे। वे अपनी जाति की मां-बहनों पर किये गये अत्याचार का बदला पाई-पाई उगहा लेने पर तुले हुए थे। पाकिस्तान के वर्णनों के अनुसार उबेद की जवान बहू और लड़की को नंगा कर दिया गया और याद कर के उन के अंगों के साथ वही व्यवहार किया गया जैसा कि मुसलमानों द्वारा हिन्दू स्त्रियों से करने की बात सुनी थी। उबेद की घरवाली की छाती पर भय से चिपटे पोते की पीठ को छेदता हुआ बल्लम दादी की पीठ के पीछे निकल गया। मरी हुई बुढ़िया के स्तन काटकर हिन्दू स्त्रियों के स्तन काटे जाने का हिसाब चुकता कर दिया गया। पाकिस्तान में मुसलमानों ने अत्याचार किये। हिन्दुस्तान में हिन्दुओं ने बदला लिया। मारी गयी दोनों जगह बेबस औरतें....

उबेद बाजार और पास-पड़ोस में सैकड़ों आदमियों के काम आया था। वह किसी का शत्रु नहीं था, कोई उस का शत्रु नहीं था। परन्तु यहाँ आदमी और आदमी की शत्रुता-मित्रता का सवाल ही नहीं था। यह जाति का मामला था, जिस मे आदमी खो जाता है। व्यक्तिगत रूप से कोई नहीं सोचता। सामूहिक झोंक सब को निसंकोच और निर्भय बना देती है। व्यक्ति का विवेक दीपक की लौ की तरह होता है और भीड़ की उत्तेजना बड़वानल की तरह। व्यक्तिगत उत्तरदायित्व और लिहाज उस आग में जल जाते हैं। उबेद का परिवार समाप्त हो गया परन्तु भीड़ की प्रतिहिंसा तृप्त न हुई। उन के मन में तो लाखों परिवारों के विनाश की जलन थी। एक परिवार को भस्म कर भीड़ की बड़वानल की लपटें और प्रबल हो उठी, जैसे आग में तेल पड़ गया हो! उन के सिरों पर खून चढ़ गया। भीड़ बावली उत्तेजना में प्रतिकार के लिये विनाश के नारे लगाती आगे बढ़ी।

बिसाती रसूले और दर्जी बशीर की दूकाने साथ-साथ थीं। उबेद की दुकान से इन्होंने हल्ला सुना था परन्तु बात नहीं समझ पाये थे। समझा था, दिहात के जाहिल आपस में भिड़ गये हैं। हिन्दू-मुसलमान का झगड़ा तो यहाँ

कभी किसी ने सुना ही नहीं था। भीड़ को "मारो मुशलों को !" चिल्लाते हुए और खून से लथपथ बल्लम और तलवारें लिए अपनी दुकान की ओर बढ़ते देख कर बशीर हड़बड़ाकर मशीन से उठा और दुकान के किवाड़ बन्द करने का यत्न करने लगा। तिलोकसिंह ने लपककर बन्द होते किवाड़ों के बीच से तलवार उस के शरीर में भोंक दी।

बशीर 'हा' मार कर गिर पड़ा। किवाड़ बन्द नहीं हो पाये। भीड़ किवाड़ धकेल कर बशीर को रौंदती हुई भीतर घुस गई। सामने दिखायी दी हाय-हाय करती बशीर की प्रौढ़ा घरवाली। लोगों ने उसे घेर लिया और उस की भी किसी क्रूरता का अक्षरश: बदला भूल न जाने का ध्यान रखते हुए वही अवस्था की जाने की तैयारी होने लगी जो पाकिस्तान में हुकूमते इलाही और पूर्वी पंजाब में 'हिन्दू राज' कायम करने का दावा करने वालों ने सिखायी है।

"मादर.... हरामजादी लौंडिया कहाँ है ?"—किसी ने पुकारा और कुछ लोग नाजू को ढूंढ़ने ऊपर की पड़छत्ती पर पहुँचे। तिलोकसिंह ऊपर न जा कर पिछवाड़े के आँगन में गया। आँगन के खुले दरवाजे से उसे दिखायी दिया कि नाजू खेतों की बाड़ों के पीछे सिर पर पाँव रखे जंगल की ओर भागी जा रही है। वह उस के पीछे-पीछे भागा।

भीड़ ने ऊपर छत का कोना-कोना छान डाला और समझा कि लौंडिया साथ के बिसाती रसूले के यहाँ जा छिपी है। नाजू को रसूले के परिवार के साथ ही समाप्त कर देने के लिए भीड़ उस ओर झुक गयी। इतनी देर में उस का पीछा करता तिलोकसिंह और नाजू पेड़ों से छायी एक टेकरी के पीछे ओझल हो चुके थे।

नाजू पीछा किया जाने की आहट पा कर और भी जोर से दौड़ी परन्तु औरत, औरत है और मर्द, मर्द ! तिलोकसिंह उस से कुछ ही कदम रह गया था कि स्वयं भी हांफ जाने के कारण उस ने जोर से डपटा—"ठहर !"

नाजू के पाँव भय से लड़खड़ा गये। उस ने निराशा से लौटकर देखा—पहचाना—"तू" और सान्त्वना का सांस भर उस ने बाहें फैला दीं।

तिलोकसिंह ने उसे कोहनी के ऊपर बांह से पकड़ कर जोर से झिंझोड़ा और दांत से होंठ काटते हुए धमकाया—"और छका ले....और भाग ?"

दोनों के दिल धक-धक कर रहे थे। दोनों हांफ रहे थे। दोनों की आंखें

फैली हुई थीं; एक क्रोध और उत्तेजना से दूसरे की भय और कातरता से। नाजू तिलोकसिंह के कंधे पर लुढ़क उस से लिपट गयी –"मैं तुझ से थोड़े ही भाग रही हूं····।" उस ने आँखें मूंद लीं।

तिलोकसिंह ने हाथ की तलवार धरती पर डाल दी और नाजू को दोनों बाहों से पकड़ घिघारू के काँटों से परे एक ओर घसीट कर गिरा दिया। नाजू उस से और भी चिपटती जा रही थी। तिलोकसिंह की इस निर्दयता से उसे संतोष और सुख मिल रहा था। वह इसे तिलोकसिंह के प्यार का अधिकार समझ रही थी और समझ रही थी कि वह रक्षा का अधिकार पा रही है।

नाजू ने आँखें खोली तो बाहें तिलोकसिंह के गले में डाल अनुरोध किया "मुझे देस ले चल।"

"हूं" – अपने को सम्भालते हुए तिलोकसिंह ने उत्तर दिया।

उसी समय घिघारू की झाड़ियों की ओट से भीड़ की आहट फिर सुनाई दी और झड़ियों के ऊपर से लोगों के सिर भी दिखाई दिये।

रसूले का घर और परिवार समाप्त कर के भी जब नाजू और रसूले का सोलह बरस का लड़का रहमत न मिले तो भीड़ के कुछ लोग इन्हें खोजते हुए इधर आ निकले थे।

"यह है मादर···मुसल्टी" ! अपने को सम्भालते हुए तिलोकसिंह ने भीड़ की ओर घूम कर पुकारा।

"हाय, मैं तेरी हूं ! मैं हिन्दू हो गई !"—नाजू तिलोकसिंह की कमर से लिपट कर कातरता से पुकार उठी –"मुझे बचा !"

पुकार सुन कर लोग उस ओर आ गये। नाजू छिपने के लिये एक झाड़ी के पीछे दौड़ी। तिलोकसिंह ने लपक कर उस की बाँह पकड़ ली और भीड़ को सम्बोधन किया -"सब लोग इस हरामजादी पर········"

नन्दलाल और तारू ने नाजू को दोनों बाहों से थाम लिया।

तारू बाजार का ही लड़का था। उसे पहचान कर नाजू हाथ जोड़ कर गिड़गिड़ायी—"दाज्यू (बड़े भाई), मैं तेरी बहिन हूं ! ········मै हिन्दू हो गई !"

उन लोगों के बीच हाय-हाय करती और सिसकती नाजू का लहूलुहान शरीर अव्यवस्थित और खुला पड़ा था। वह अपने आप को सम्भाल सकने में भी असमर्थ थी।

"अब खतम करो इस हरामजादी को !"—कोई बोला ।

नौजवानों के क्रोध की आग उन का पौरुष व्यय हो जाने से धीमी पड़ गई थी । तिलोकसिंह के हाथ से जमीन पर पटकी हुई तलवार कई लोगों के पाँव की ठोकरों से झाड़ियों के बीच और घनी घास मे जाने कहाँ छिप गई थी । तिलोकसिंह और दूसरे लोगों ने तलवार के लिये इधर उधर आँखें दौड़ाई, पाँव से टटोला तलवार मिली नहीं ।

तिलोकसिंह ने जब में पड़ा छोटा चाकू निकाल लिया और नाजू पर झपटा । तिलोकसिंह को चाकू लिये अपने ऊपर झुकते देख नाजू बचाव के लिये दोनो हाथ बढ़ा चीख उठी—"हाय ना ! मै हिन्दू'''''"

तिलोकसिंह ने नाजू के रक्षा के लिये बढ़े हाथों को बाँयें हाथ से एक ओर झटक उसे नीचे से पेट तक फाड़ देने के लिये चाकू चला दिया ।

नाजू "हा !" चीख चुप हो गई । चाकू छोटा और भौंतरा होने के कारण अधिक काट न कर सका । भीड़ उसे खतम हो गया समझ गाली देती देती हुई लौट गयी ।

× × ×

बड़ौरी और पड़ोस के देहात के काँग्रेसी लोगों को अपनी बस्ती में ऐसा अत्याचार हो जाना सह्य नहीं था । दंगे की खबर पाते ही उन्होने सरपंच, मुखिया और पटवारी को बुलवा कर घायलों को ढूंढना शुरू किया । बाजार के जो लोग पहले 'मुशल्टों को मारो !' चिल्ला रहे थे, अब लज्जित हो कर सहायता के लिये आ जुटे । जले हुए मकानों पर भी पहरा लगा दिया गया कि अब किसी का और नुकसान हो । बशीर जख्मी हो कर बेहोश हो गया था परन्तु प्राण शेष थे । ऐसी ही हालत नजीर लुहार की थी । नाजू भी लालटैनों और मशालों की सहायता से क्षत-विक्षत हालत में कराहती हुई ढूंढ ली गयी । काँग्रेस के लोगों ने इन ज़ख्मियों को डोलियों में लाद कर अपने कंधों पर मीलों दूर बागेश्वर के अस्पताल में पहुँचाया । मुर्दे, जाँच पड़ताल के बाद दफनाये जाने के लिये एक जगह इक्ट्ठे कर दिये गये ।

कांग्रेसी राज में ऐसी दुर्घटना हो जाने के कारण कांग्रेसी दुखी और लज्जित थे । उन की नजर में हिन्दू, मुसलमान की पहचान नहीं, आदमी की पहचान थी । वे चाहते थे, अपराधियों को पूरा दंड मिले, न्याय हो । फिर ऐसी घटना न हो सके । दुनिया देख ले, कांग्रेसी राज हिन्दुओं का नहीं, न्याय

का है। सरकार भी बहुत चौकसी से मामले की जांच कर रही थी। बडौरी में पुलिस और सशस्त्र-पुलिस के पड़ाव पड़ गये। कांग्रेसी लोग जनता को न्याय के लिये पुकार कर अपराधियों और संदिग्ध लोगों को गिरफ्तार करवा रहे थे। बाजार के दस आदमियों के साथ चार पंजाबी शरणार्थी तिलोकसिंह, बच्चीसिंह और स्कूल के चार और लड़के भी गिरिफ्तार कर लिये गये।

तिलोकसिंह के पिता जोधसिंह ने खबर सुनी तो उस के पांव तले से धरती निकल गयी। सभी ने समझाया कि मामला संगीन है। सरकार सख्ती से काम ले रही है। पुलिस को खिलाने-पिलाने से कुछ नहीं बनेगा। बचने का एक ही उपाय है कि तिलोकसिंह सच-सच कह कर क्षमा मांग ले और सरकारी गवाह बन जाये।

पुलिस ने अपराधियों को डरा कर भेद लेने के लिए अलग-अलग बन्द कर दिया था। सभी को बताया गया कि जख्मियों के बयानो से और दूसरे लोगों के बयानों से सब बात पता लग चुकी है। तिलोकसिंह को फांसी और कालेपानी का डर दिखाया गया। उस के पिता ने रो-रो कर उसे समझाया और तिलोकसिंह ने अपने प्राण बचाने के लिये सब बक दिया। पुलिस के खोद-खोद कर पूछने पर उस ने उबैद के कत्ल में सहयोग, बशीर को तलवार से बेधने और नाजू के साथ दुर्व्यवहार कर उसे नीचे से काटकर कत्ल कर देने का अपराध भी स्वीकार कर लिया। उसे आशा थी सच बोल देने से बच जायगा।

मामले की तहकीकात मे महीनों लग गये। जख्मियों के चलने फिरने योग्य हुए बिना गवाही के लिये अदालत में लाया नहीं जा सकता था। मुकद्दमा आरम्भ होने पर जब सब लोगों को एक एक साथ अदालत में लाया गया तो पता चला कि बयान केवल तिलोकसिंह ने दिया था। लोग उस की लानत-मलामत करने लगे—"........मरेगा तो एक ही बार? फिर किये-कराये धर्म और बहादुरी पर पानी फेर कर मुँह काला क्यों करवाता है?"

यह भी पता चला कि बयान केवल बशीर और नजीर के ही हैं और पूरा मुकद्दमा तिलोकसिंह के इकबाल (अपराध स्वीकृत) पर ही खड़ा है। मालूम हुआ कि नाजू इतनी डरी और सहमी हुई है कि उस ने कोई बयान दिया ही नही। लोगों के भरोसा दिलाने पर तिलोकसिंह अपने बयान से पलट गया। इसीलिए हमारे मित्र वकील साहब की मुकद्दमे में जरूरत पड़ी। वकील साहब

ने भी मामला देखकर गवाही कच्ची बतायी और तिलोकसिंह को छुड़ा लेने का विश्वास दिला दिया

इस बीच पता लगा कि नाजू केवल ठीक ही नहीं हो गयी बल्कि उस के शरीर में एक और जान आ गयी है। उस के बाप ने माथा ठोंक लिया। जैसे-तैसे नाजू का निकाह सोमेश्वर के एक मुसलमान लुहार के लड़के से करा दिया गया। बयान देने के लिए नाजू पर उस की बिरादरी और पुलिस का बहुत जोर पड़ रहा था क्योंकि तिलोकसिंह के पलट जाने से मुकद्दमे के पाँव ही कट गये थे। बिरादरी के लोगों ने नाजू को फटकारा—अपनी कौम और जात पर जुल्म करने वाले काफ़िर को बचायगी ? ....तुझे अल्ला दोजख मे भी माफ़ नहीं करेगा। नाजू ने मजिस्ट्रेट के सामने अपना बयान दे दिया।

उत्साही हिन्दू भाइयों के यत्न से पुलिस की गवाहियाँ जम नही पा रही थी। कुछ गवाह उखड़ गये, कुछ जिरह में कट गये। बहुत से अभियुक्त मजिस्ट्रेट के यहां से ही बरी हो गये। तिलोकसिंह, नन्दलाल, बच्चीसिंह और तारू का मामला सेशन सुपुर्द कर दिया गया परन्तु सगठित आक्रमण के षड़यंत्र के लिये नही, अभियुक्तों पर अलग-अलग अपराध के लिये।

पिछले दिन सेशन मे सध्या समय तिलोकसिंह के मामले के मुख्य गवाहों बशीर और नाजू के बयान हुए थे। बशीर के बयान का मूल्य नाजू की गवाही के बिना कुछ नही था। नाजू चादर ओढ़े आंखें नीची किये बयान दिये जा रही थी। वह बाप के शरीर मे तलवार भोंकती देख कर अपनी जान बचाने के लिये भाग कर पकड़ी जाने, अपनी दुर्दशा और चाकू के आक्रमण से बेहोश हो जाने और अस्पताल पहुँचायी जाने तक की सब कहानी धीमे-धीमे कह गयी। वकील साहब को जान पड़ रहा था कि नाजू का प्रत्येक शब्द उन के अभियुक्त को अपराध की रस्सी से बांधे दे रहा है। कटघरे से चलते समय नाजू ने सिर्फ एक नजर तिलोकसिंह की ओर डाली। तिलोकसिंह का चेहरा फक था।

अगले दिन सफाई की ओर से जिरह थी। वकील साहब रात भर गवाही और जिरह के क़ानूनों और नजीरों का अध्ययन करते रहे। सुबह मानसिक उत्तेजना के कारण वे कुछ जल्दी ही अदालत आ गये थे और बरामदे के सामने धूप में कुर्सी पर बैठे बशीर और नाजू के बयानों को बारीकी से मिला कर उन में असंगति ढूंढ़ रहे थे। नाजू भी पुकार की प्रतीक्षा में अदालत के अहाते में खुबानी के पेड़ के नीचे बैठी थी। उस का बच्चा भी गोद में था।

अभियुक्तों के आने पर अदालत का बरामदा बेड़ियों की खनखनाहट से गूंज उठा। वकील साहब की नजर अपने अभियुक्त की ओर गयी। तिलोकसिंह सिर झुकाये चला जा रहा था। वकील साहब ने घूम कर नाजू की ओर भी देखा, वह टकटकी लगाये तिलोकसिंह की ओर देख रही थी। वकील साहब को ऐसा मालूम हुआ कि क्रुद्ध बाघिन हाथ से निकले शिकार को घूर रही हो। उन्हें ऐसा मालूम होता भी क्यों न ? इसी चुटियाई और बफरी हुई बाघिन के पंजे से उन्हें तिलोकसिंह को बचाना था।

वकील साहब ने जिरह में बशीर को काफी परेशान किया था और अदालत को इस परिणाम पर पहुंचा दिया था कि घटना के समय वह बदहवासी की हालत में था। उस के बयान की सचाई का प्रमाण क्या ? उन्होंने मन में सोच रखा था कि बशीर के बयान की गवाही है, नाजू, उसी की लड़की। वे अदालत को समझायेंगे कि बेटी तो बाप की सी कहेगी ही। कोई और भी तो प्रमाण होना चाहिये।

नाजू को जिरह के लिए कठघरे में पुकारा गया। वकील साहब को फिर जान पड़ा कि नाजू ने तिलोकसिंह को उड़ती-उड़ती नज़रों से देखा है। वह शान्त और बेपरवाह दिखाई दे रही थी, जैसे बिल्ली शिकार को पंजे के नीचे सुरक्षित समझ कर निश्चिन्त हो जाती है।

"तुम बशीर दर्जी की लड़की हो न ?"--वकील साहब ने पूछा।

"हां"—नाजू ने ठोढी झुका हामी भरी।

"तुम ने तहकीकात के समय पुलिस या मैजिस्ट्रेट के सामने बयान दिया था ?'

"नहीं"—नाजू ने इनकार में सिर हिला दिया।

"क्यों, क्या डर था किसी का ?"

"नहीं"

"तो बयान क्यों नहीं दिया ?"

"ऐसे ही"

"तो अब बयान कैसे दे रही हो ?"

"लोग नहीं मानते तो क्या करूं ?"

वकील साहब ने जज साहब की ओर देखा। जज साहब ने नाजू की ओर देखा। नाजू ने आँखें झुका लीं। वकील साहब ने कनपटी खुजा कर कुछ

सोचा और प्रश्न किया – "इस का मतलब है तुम पर बयान देने के लिए जोर डाला गया है ?"

"हां तो, तो है"—नाज़ू ने हामी भरी।

"किस ने जोर डाला है ? पुलिस ने ?"

"और क्या"—नाज़ू ने हामी भरी।

"बाप और बिरादरी के लोगों ने भी जोर डाला है ?"

"हूँ"—नाज ने सिर झुका कर स्वीकार किया।

"वकील साहब ऐसे हैरान थे जैसे उन्हों ने आत्मरक्षा में प्रहार के लिये हाथ उठाया हो, परन्तु देखा कि उन्हें तो सहारा मिल रहा है। जल्दबाजी न करने के लिये उन्होंने कनपटी को खुजाया और धीमे से प्रश्न किया—"तुम तिलोकसिंह को बहुत दिन से पहचानती हो न ?"

"नहीं"—नाज़ू ने इनकार में सिर हिला दिया।

"अच्छा अब तो खूब पहचानती हो न ?"

नाज़ू कुछ झिझकी और फिर इनकार में सिर हिला दिया—"नहीं।"

वकील साहब ने देखा कि जज साहब के माथे पर सिकुड़न पड़ गये। वकील साहब ने फिर नाज़ू को सम्बोधन किया—"बडौरी के बाजार के आदमियों लक्खी साह जी, तारादत्त, मसूद को तुम पहचानती थी ?

"हां"—नाज़ू गे हामी भरी

"ये लोग अब भी सामने आयें तो पहचान लोगी ?"

नाज़ू ने फिर सिर झुकाकर हामी भरी।

वकील साहब ने संतोष का लम्बा सांस लेकर अदालत को धन्यवाद दिया और बोले उन्हें और जिरह की आवश्यकता नहीं, न सफाई की ओर से कोई गवाह पेश करके वे अदालत का समय लेना चाहते हैं। नाज़ू को कठघरे से बाहर जाने की छुट्टी दे दी गयी। तिलोकसिंह का बाप दंगे के दिन तिलोकसिंह के 'बडौरी' में न होने की गवाही मैजिस्ट्रेटी में पेश कर चुका था परन्तु वकील साहब ने अब उस की भी जरूरत न समझी।

इस के बाद सरकारी वकील बोले और सफाई वकील भी कुछ बोले परन्तु जज के माथे पर बढ़ती जाती सिकुड़नों से जान पड़ रहा था कि समय व्यर्थ नष्ट किया जा रहा है। उन्होंने असेसरों की राय ली। असेसरों में केवल एक मुसलमान था। गवाही को देखते उस ने अभियुक्त के निर्दोष होने की ही

राय दी । जज साहब फैसला लिखने भीतर के कमरे मे चले गये । मालूम हुआ कि फैसला अभी दे दिया जायगा ।

वकील साहब तिलोकसिंह के बाप को एक ओर बुला कर आहिस्ता से बोले—"तुम बेशक लड़के की बेड़ी यहाँ ही कटाने के लिये एक लोहार बुला लो ।"

जोधसिंह की आँखों में कृतज्ञता के आँसू छलक आये । वह वकील साहब के पांव छू लेने के लिये झुक गया ।

जज साहब ने फैसले में पुलिस की धांदली की निन्दा कर तिलोकसिंह को तुरन्त छोड़ दिये जाने का हुक्म दे दिया ।

वकील साहब तिलोकसिंह के कंधे पर हाथ रखे उसे बरामदे में से लिवाये लिये जा रहे थे तब फिर उन की निगाह सामने पेड़ के नीचे गयी । नाजू अपने बच्चे को गोद में लिये बशीर और एक दूसरे आदमी के साथ वहाँ ही खड़ी थी । शायद जज साहब के फैसला लिखने में व्यस्त हो जाने के कारण उस के खुराकी-खर्च के कागज पर दस्तखत नहीं हो सके थे । वह अब भी टकटकी बांधे तिलोकसिंह की ओर देख रही थी ।

तिलोकसिंह की नज़र भी उस ओर गई । नाजू ने गोद के बच्चे को उसे दिखाने के लिये बढ़ाकर चूम लिया और मुस्करा दी ।

वकील साहब के पांव डगमगा गये । उन्होंने तिलोकसिंह की ओर देखा, उस की आँखे छलक आयी थीं और सिर झुक गया था ।

वकील साहब कुर्सी पर उत्तेजना में सीधे होकर बोले—"हिन्दू इस जीत से खुश थे । पुलिस दांत पीस कर खिसिया कर रह गयी; परन्तु जानते हो तीन महीने बाद, आज क्या देखा ?"—वकील साहब ने मेरी बांह पर हाथ धर कर पूछा—"आज दोपहर तिलोकसिंह को अस्पताल के पास देखा । उस का बाप उसे डांडी (डोली) पर लाया था । मुझे देख कर उस की आँखों में आँसू आ गये । बोला—"वकील साहब, जाने इसे क्या हो गया है ? भूख ही नहीं लगती, बुखार सा रहता है । डाक्टर को दिखाया, उस ने तपेदिक बता दिया है । हुज़ूर, मैं तो बरबाद हो गया । इस का तो जानो मन मर गया है । जाने भाग में क्या बदा है ?"

× × ×

वकील साहब एक लम्बी सांस ले बोले—"इसे किस की जीत कहा जाये ? हिन्दू की जीत, मुसलमान की जीत या न्याय की जीत ?……नाजू हिन्दू नहीं, इस्लाम को भी नहीं जानती, अहिंसा और उदारता नहीं समझती, उसे हिन्दू राज और मुस्लिम राज का भेद नहीं मालूम। वह औरत है, प्यार करना जानती है और प्यार मे क्षमा करना जानती है…उसे कौन हरायेगा ? कितना हार कर भी वह जीत गई ?"